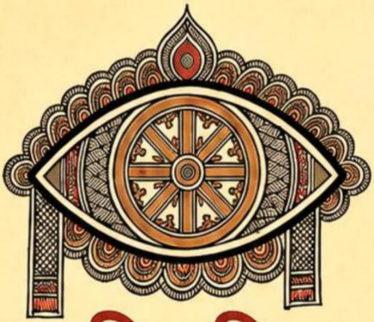

नियति आ पुरुषार्थ

मैथिली कथा संग्रह

जगदीश प्रसाद मण्डल

नियति और पुरुषार्थ

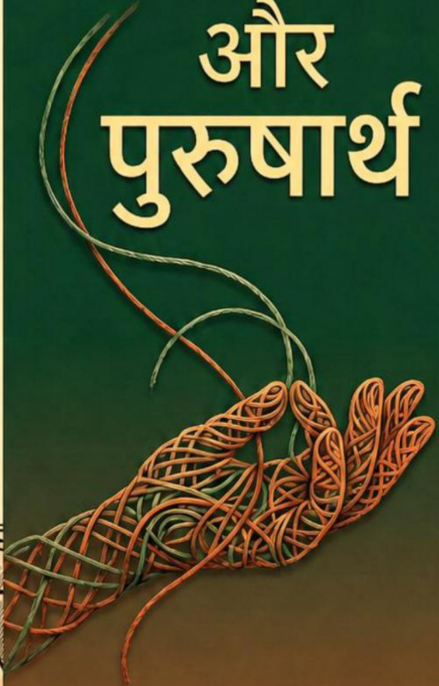

हिंदी अनुवाद

अवधेश पटेल

NIYATI AUR PURUSHARTH

Hindi Translation of the
Maithili Story Collection
Niyati air Purushaarth

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

नियति आ पुरुषार्थ

मैथिली कथा संग्रह

जगदीश प्रसाद मण्डल

नियति और पुरुषार्थ

हिंदी अनुवाद

अवधेश पटेल

नियति और पुरुषार्थ

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिंदी अनुवाद

अवधेश पटेल

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

NIYATI AUR PURUSHARTH

Hindi Translation of the Maithili Story Collection Niyati aa Purushaarth
A Child-Centred Maithili Story Collection Exploring Childhood, Moral Inquiry, Destiny and Human Endeavour
Original Author: Shri Jagdish Prasad Mandal
Hindi Translation: Avadhesh Patel

Niyati Aur Purusharth brings to Hindi readers the reflective and philosophical richness of Shri Jagdish Prasad Mandal's Maithili story collection Niyati aa Purushaarth. Mandal is a distinguished voice in modern Maithili literature, recognised for ethical realism, social rootedness and disciplined narrative vision. His work has earned major honours, including the Tagore Literature Award in 2011 for Gaamak Jinagi and the Sahitya Akademi Award in 2021 for Pangu.

Centred on the relationship between destiny and human endeavour, this collection explores fundamental questions of life through a simple, tender and reflective narrative style. Mandal neither presents destiny as blind fatalism nor reduces effort to personal ambition. He places both within the lived world of thought, conduct, responsibility, knowledge and moral awareness.

Though voiced through the curiosity of young minds, these stories speak to readers of all ages. Happiness and sorrow, knowledge and superstition, affection and duty, labour and dignity, belief and reason emerge naturally in Mandal's narrative world. The collection affirms that life's meaning is shaped through knowledge, character, disciplined action and purposeful human endeavour.

Published by: Pallavi Prakashan
Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward no. 06, Nirmali, District: Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2026
ISBN: 978-93-48865-31-1
Price: 299/-
Copyright: © Publisher, 2026
Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)
Typesetting: Dr. Umesh Mandal, umeshberma@gmail.com
Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com
Email: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563
Font Source: Google Fonts

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, distributed, transmitted, adapted, paraphrased, stored in a retrieval system, or processed in any form or by any means, including electronic, mechanical, digital, or artificial intelligence systems, without the prior written permission of the copyright holder or the publisher.

समर्पण

उन सभी बाल-मन को समर्पित,
जो प्रश्न करते हैं, सोचते हैं, सीखते हैं
और जीवन को समझने की दिशा में आगे बढ़ते हैं।

उन सभी गुरुजनों को समर्पित,
जो जिज्ञासा को ज्ञान में
और ज्ञान को चरित्र में रूपांतरित करते हैं।

और उन सभी पाठकों को समर्पित,
जो विश्वास करते हैं कि नियति मनुष्य के सामने परिस्थितियाँ रख सकती है, किन्तु जीवन का सार्थक अर्थ ज्ञान, संस्कार, कर्म और पुरुषार्थ से ही निर्मित होता है।

- अवधेश पटेल

अनुक्रम

भूमिका

1. सुख और दुख
2. दुख और सुख
3. जीवन क्या है और जीवन का उद्देश्य क्या है?
4. अंधविश्वास
5. विवादप्रिय लोग
6. नव जीवन
7. प्रीति
8. पुरुषार्थ
9. मन अटक गया
10. नियति और पुरुषार्थ

भूमिका

☰

श्री जगदीश प्रसाद मण्डल का कथा-साहित्य जीवन के साधारण प्रसंगों में निहित असाधारण अर्थों की खोज करता है। उनके यहाँ कथा केवल घटनाओं का क्रम नहीं रहती, बल्कि जीवन को देखने, परखने और समझने की एक सृजनात्मक पद्धति बन जाती है। वे मनुष्य को उसके परिवेश से अलग करके नहीं देखते। उनके लिए जीवन खेत, श्रम, परिवार, समाज, जातीय संबंध, शिक्षा, संघर्ष, नैतिकता और परिवर्तन की एक समेकित प्रक्रिया है। यही कारण है कि उनकी कथाओं में छोटी-सी बातचीत भी बड़े जीवन-सत्य का द्वार खोल देती है।

'नियति और पुरुषार्थ' इसी दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कथा-संग्रह है। यह बाल-किशोर मन को केंद्र में रखकर लिखा गया है, किन्तु इसका वैचारिक विस्तार केवल बाल-साहित्य की सीमित परिधि तक सीमित नहीं है। यह पुस्तक बच्चों की जिज्ञासाओं से आरम्भ होकर मनुष्य, समाज, कर्म, विश्वास, विवेक, प्रेम, कर्तव्य, आत्मचिंतन और जीवन-दर्शन की व्यापक भूमि तक पहुँचती है। यहाँ बाल-मन प्रश्न करता है, शिक्षक संवाद रचता है और साधारण जीवन धीरे-धीरे विचार की उजली भूमि में प्रवेश करता है।

इस संग्रह की मूल मैथिली कृति 'नियति आ पुरुषार्थ' है। हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रस्तुत यह पुस्तक उन पाठकों तक मण्डलजी की रचनात्मक दृष्टि पहुँचाने का प्रयास है, जो मैथिली के जीवंत लोक-संसार और उसमें निहित जीवन-बोध से परिचित होना चाहते हैं। अनुवाद का उद्देश्य केवल शब्दांतरण नहीं, बल्कि उस संवेदना, विचार-गति, संवाद-लय

और लोक-गंध को हिन्दी में जीवित रखना है, जो मूल रचना की आत्मा है। मण्डलजी की भाषा जीवन से उपजी हुई भाषा है। उसमें खेत, गाम, ओसारा, चापाकल, चाय, जलखै, स्कूल, रास्ता, परिवार, समाज, लोक-उपमान और अनुभवजन्य विचार एक साथ चलते हैं। इसीलिए इस पुस्तक को पढ़ते समय पाठक केवल कथा नहीं पढ़ता, बल्कि मिथिला के ग्रामीण जीवन की जीवंत धड़कनों को भी महसूस करता है।

जगदीश प्रसाद मण्डल के साहित्य को उनके जीवन से अलग करके नहीं समझा जा सकता। उनका रचनाकार व्यक्तित्व अचानक पुस्तक के पृष्ठों पर उपस्थित नहीं हुआ; उसके पीछे मिथिला का ग्राम्य जीवन, कृषक परिवार का श्रम-संस्कार, बाल्यकाल के संघर्ष, सामाजिक विषमता के अनुभव, जातीय-सामाजिक संरचनाओं से निकट परिचय, शोषित-वंचित समाज के प्रति गहरा लगाव और दीर्घ सामाजिक सक्रियता का सुदृढ़ आधार है। उन्होंने समाज को दूर से नहीं देखा, बल्कि उसके बीच रहकर, उसके ताप को सहकर और उसके संघर्षों में भाग लेकर उसे समझा। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उपदेश की कृत्रिमता नहीं, बल्कि जीवन से अर्जित सत्य की ऊष्मा मिलती है।

मण्डलजी का जीवन केवल साहित्यिक साधना तक सीमित नहीं रहा। उनके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष समाजसेवा, जनसंघर्ष और लोकप्रतिबद्धता से निर्मित है। वे ग्राम-समाज की समस्याओं, सामन्ती व्यवहार, जातिगत कट्टरता, बँटेदारी की विषमता, भूमि-संबंधी विवादों, किसानों के अधिकारों और शोषित वर्ग की पीड़ा से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे। उन्होंने सामाजिक विकृतियों को केवल लिखा ही नहीं, बल्कि उनका सक्रिय प्रतिरोध भी किया। यही जीवनानुभव उनके साहित्य में किसान, श्रमिक, दलित, वंचित, स्त्री, बालक और साधारण मनुष्य की उपस्थिति को प्रामाणिक बनाता है। उनके यहाँ समाज केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा का नैतिक केन्द्र बनकर उपस्थित होता है।

उनकी सामाजिक दृष्टि में संघर्ष के साथ करुणा, प्रतिरोध के साथ

विवेक और परिवर्तन की आकांक्षा के साथ मनुष्य पर विश्वास है। जाति-प्रथा का विरोध उनके लिए केवल वैचारिक घोषणा नहीं, बल्कि समरस समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। किसान और बँटेदार के प्रश्न उनके लिए मात्र आर्थिक विषय नहीं, बल्कि न्याय और मानवीय सम्मान के प्रश्न हैं। भूदान जैसे आंदोलनों की विकृतियों को वे केवल ऐतिहासिक प्रसंग की तरह नहीं देखते, बल्कि इस रूप में समझते हैं कि कोई भी सामाजिक सुधार नैतिकता, पारदर्शिता और वास्तविक जनहित के बिना सफल नहीं हो सकता। इसीलिए मण्डलजी का साहित्य लोकजीवन के पक्ष में खड़ा एक नैतिक हस्तक्षेप भी है।

मण्डलजी की साहित्य-दृष्टि का मूल आग्रह है कि साहित्य समाज से कटकर नहीं रह सकता। सच्चा लेखक वही है, जिसकी दृष्टि एक ओर समाज पर और दूसरी ओर कागज-कलम पर बनी रहे। 'नियति और पुरुषार्थ' इसी दृष्टि का अत्यंत कोमल, पर गंभीर रूप है। यहाँ प्रतिरोध सीधी घोषणा बनकर नहीं आता, बल्कि बाल-मन में प्रश्न के रूप में जन्म लेता है। यहाँ समाज-सुधार भाषण नहीं बनता, बल्कि गोपालबाबू, मुनीलाल, धुनीलाल और विमलबाबू के संवादों में धीरे-धीरे खुलता है। यहाँ दर्शन शास्त्रीय बोझ नहीं बनता, बल्कि चाय पीते हुए, डेरे पर बैठते हुए, स्कूल से लौटते हुए और किसी कार्यक्रम में भाग लेते हुए जीवन की सहज बातचीत में उतरता है।

इस संग्रह की कथा-योजना अत्यंत रोचक है। दो विद्यार्थी हैं, मुनीलाल और धुनीलाल। वे साधारण ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए बालक हैं, पर उनके भीतर प्रश्न करने की बेचैनी है। एक शिक्षक हैं, गोपालबाबू। वे केवल पाठ पढ़ाने वाले शिक्षक नहीं, बल्कि जीवन को समझाने वाले गुरु हैं। आगे चलकर विमलबाबू आते हैं, जो विज्ञान के शिक्षक हैं, पर जीवन-दर्शन के प्रश्न पर स्वयं को विनम्र विद्यार्थी की तरह प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार कथा का संवाद-वृत्त बच्चों और वयस्कों, विद्यार्थी और शिक्षक, साहित्य और विज्ञान, विश्वास और विवेक, व्यक्ति और समाज, नियति और पुरुषार्थ, सबको एक साथ जोड़ देता है। यही इस संग्रह की रचनात्मक

विशेषता है कि यह बालक को छोटा नहीं मानता, शिक्षक को पूर्ण नहीं मानता और जीवन को अंतिम उत्तरों में बंद नहीं करता। यह प्रश्न से चलती है, संवाद से फैलती है और आत्मचिंतन में अपना अर्थ पाती है।

पहली कथा 'सुख और दुख' पूरे संग्रह का वैचारिक द्वार खोलती है। यह केवल आरम्भिक कथा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पुस्तक की विचार-यात्रा का बीज-बिन्दु है। बाह्य रूप से इसका प्रसंग अत्यंत सरल है: विद्यालय की कक्षा, हिंदी के शिक्षक गोपालबाबू, नौवीं कक्षा के दो विद्यार्थी मुनीलाल और धुनीलाल, तथा पंतजी की कविता की एक पंक्ति। किंतु इसी साधारण शैक्षिक वातावरण में जीवन का एक असाधारण प्रश्न जन्म लेता है। जब मुनीलाल और धुनीलाल सुनते हैं कि संसार दुख से भी पीड़ित है और सुख से भी, तब उनके बाल-मन में स्वाभाविक जिज्ञासा उठती है कि एक ही जगत सुख और दुख दोनों से कैसे व्यथित हो सकता है। यही प्रश्न आगे चलकर पूरे संग्रह की दार्शनिक भूमि तैयार करता है।

मण्डलजी यहाँ शिक्षा का एक गहरा सत्य उद्घाटित करते हैं: सच्ची शिक्षा केवल पाठ समाप्त नहीं करती, बल्कि मन में प्रश्नों की हलचल उत्पन्न करती है। जो शिक्षा बालक के भीतर विचार की बेचैनी जगा दे, वही वास्तव में जीवनोपयोगी बनती है। मुनीलाल और धुनीलाल तत्काल कक्षा में प्रश्न नहीं करते, क्योंकि वे गुरु और कक्षा की मर्यादा से परिचित हैं; पर भीतर उनका मन निरंतर विचलित रहता है। यह बेचैनी ही बाल-जिज्ञासा की वास्तविक पहचान है। मण्डलजी इस जिज्ञासा को मात्र बाल-सुलभ चंचलता नहीं मानते, बल्कि जीवन-बोध की पहली सीढ़ी के रूप में स्थापित करते हैं।

इस कथा में गोपालबाबू का चरित्र भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण बनकर उभरता है। वे बच्चों की जिज्ञासा को न तो टालते हैं, न दबाते हैं और न ही उसे अनुशासनहीनता मानते हैं। इसके विपरीत, वे उसे समय देते हैं, स्थान देते हैं और संवाद का रूप प्रदान करते हैं। इसी कारण वे केवल शिक्षक नहीं रह जाते, बल्कि एक जीवन-दर्शी गुरु के रूप में सामने आते हैं। बच्चों का

उनके डेरे पर जाकर प्रश्न का विस्तार करना यह संकेत देता है कि शिक्षा केवल कक्षा की चारदीवारी तक सीमित नहीं रहती; उसका वास्तविक विस्तार जीवन के सहज और आत्मीय वातावरण में होता है।

यह कथा स्पष्ट कर देती है कि 'नियति और पुरुषार्थ' बाल-मन को निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं मानता। यहाँ बालक केवल सुनता नहीं, बल्कि सोचता है; केवल स्मरण नहीं करता, बल्कि प्रश्न करता है; केवल पाठ नहीं पढ़ता, बल्कि जीवन को समझने की दिशा में पहला कदम बढ़ाता है। 'सुख' और 'दुख' जैसे सामान्य प्रतीत होने वाले शब्दों के भीतर जीवन का गहरा द्वंद्व निहित है, और मण्डलजी उसी द्वंद्व को बाल-जिज्ञासा के माध्यम से उद्घाटित करते हैं। इस प्रकार 'सुख और दुख' संग्रह की मूल पद्धति स्थापित करती है: प्रश्न से विचार, विचार से संवाद, और संवाद से जीवन-बोध की ओर यात्रा।

इस कथा से स्पष्ट हो जाता है कि 'नियति और पुरुषार्थ' बाल-मन को निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं मानता। यहाँ बालक केवल सुनता नहीं, सोचता है; केवल याद नहीं करता, प्रश्न करता है; केवल पाठ नहीं पढ़ता, बल्कि जीवन को समझने की दिशा में पहला कदम रखता है। 'सुख' और 'दुख' जैसे सामान्य लगने वाले शब्दों के भीतर जीवन का गहरा द्वंद्व छिपा है, और मण्डलजी उसी द्वंद्व को बाल-जिज्ञासा के माध्यम से उद्घाटित करते हैं। इस प्रकार 'सुख और दुख' संग्रह की मूल पद्धति स्थापित करती है: प्रश्न से विचार, विचार से संवाद, और संवाद से जीवन-बोध की ओर यात्रा। यही कारण है कि पहली कथा पूरी पुस्तक के प्रवेश-द्वार का कार्य करती है। आगे की सभी कथाएँ इसी प्रश्न-जागरण को क्रमशः कर्म, विवेक, जीवन-दर्शन और पुरुषार्थ की व्यापक भूमि तक ले जाती हैं।

'दुख और सुख' में पहली कथा से जन्मी जिज्ञासा आगे बढ़ती है। पन्द्रह दिन बाद मुनीलाल और धुनीलाल फिर गोपालबाबू के पास पहुँचते हैं। अब गुरु-शिष्य संबंध विद्यालय की औपचारिक मर्यादा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि आत्मीय संवाद का रूप लेने लगता है। दोनों विद्यार्थी साधारण

हैं, पर उनका मन साधारण नहीं है। वे सुनते हैं, सोचते हैं, भीतर से बेचैन होते हैं और फिर प्रश्न लेकर गुरु के पास आते हैं। मण्डलजी बाल-मन को केवल पाठ ग्रहण करने वाला मन नहीं मानते; उनके यहाँ बालक शिक्षा को प्रश्न में बदलता है। यही इस संग्रह की बड़ी शक्ति है।

इस कथा का मुख्य प्रश्न है: सुख क्या है और दुख क्या है? साथ ही, धुनीलाल प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति के विषय में भी जानना चाहता है। इससे स्पष्ट होता है कि बाल-जिज्ञासा धीरे-धीरे सामान्य अनुभव से दार्शनिक धरातल की ओर बढ़ रही है। गोपालबाबू बच्चों के प्रश्नों को छोटा नहीं मानते। वे जानते हैं कि बाल-मन में उठी जिज्ञासा को दबाना उचित नहीं; उसे दिशा देना ही सच्चे शिक्षक का कार्य है। इसलिए वे प्रश्नों को क्रम देते हैं और जीवन-विचार की परंपरा से जोड़ते हैं।

कथा में उद्धृत संस्कृत श्लोक सुख-दुख के प्रश्न को विशेष गहराई देता है। उसके माध्यम से यह भाव सामने आता है कि सुख-दुख का दाता कोई दूसरा नहीं है; मनुष्य अपने कर्म-सूत्र में बँधा हुआ है। इस प्रकार मण्डलजी सुख-दुख को केवल भाग्य, परिस्थिति या बाहरी दोषारोपण से नहीं जोड़ते, बल्कि कर्म, आत्म-जिम्मेदारी, आत्मबोध और चरित्र से जोड़ते हैं। यहाँ जीवन को समझने की शुरुआत बाहर देखने से नहीं, भीतर झाँकने से होती है।

यही क्रम तीसरी कथा 'जीवन क्या है और जीवन का उद्देश्य क्या है?' में जीवन-दर्शन की दिशा ग्रहण करता है। अब जिज्ञासा केवल सुख-दुख तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जीवन के मूल अर्थ की ओर बढ़ती है। यहाँ जीवन केवल जी लेने की वस्तु नहीं, बल्कि समझने, सँवारने और सार्थक बनाने की साधना बन जाता है। ज्ञान, दर्शन और चरित्र का सामंजस्य जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाता है। इस प्रकार संग्रह की प्रारम्भिक कथाएँ बाल-जिज्ञासा को क्रमशः विचार, आत्मबोध और जीवन-दृष्टि में रूपांतरित करती हैं। यही बौद्धिक भूमि आगे चलकर नियति और पुरुषार्थ जैसे बड़े प्रश्न को समझने योग्य बनाती है।

'अंधविश्वास' कथा मण्डलजी की विवेकवादी दृष्टि का सशक्त उदाहरण है। यहाँ गोपालबाबू अंधविश्वास को किसी एक लोक-विश्वास, टोना-टोटका या झाड़-फूँक तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे समाज की पुरानी, गहरी और बहुस्तरीय बीमारी के रूप में समझाते हैं। साँप काटने पर लहेरियासराय जाकर विष उतरवाना, झाड़-फूँक, विसहारा गहवर, ढोल-मृदंग, मनुखदेवा, ग्रह, भूत, रोग और कर्म जैसे प्रसंगों के माध्यम से ग्रामीण समाज में उपचार, विश्वास और अंधविश्वास की मिली-जुली स्थिति सामने आती है। मण्डलजी इस स्थिति का सीधा उपहास नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि लोकविश्वास समाज की स्मृति और भय, दोनों से निर्मित होते हैं। वे इन्हें विवेक की कसौटी पर परखते हैं और बच्चों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि हर मान्यता को आँख मूँदकर स्वीकार करना उचित नहीं।

इस कथा में बाल-मन को केवल नैतिक शिक्षा नहीं दी जाती, बल्कि उसे विश्वास और अंधविश्वास के बीच अंतर समझने की दृष्टि दी जाती है। गोपालबाबू के माध्यम से लेखक यह स्थापित करते हैं कि बीमारी, ग्रह, भूत और कर्म जैसे अनेक स्पष्टीकरणों के बीच मनुष्य को बुद्धि, अनुभव, तर्क और आत्म-जिम्मेदारी से रास्ता खोजना चाहिए। अंधविश्वास से मुक्ति केवल नकार या विरोध से संभव नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण समझ, वैज्ञानिक चेतना और प्रश्न करने की क्षमता से संभव है। इस प्रकार यह कथा परंपरा और विवेक के बीच संतुलित दृष्टि निर्मित करती है तथा बच्चों को जीवन को बुद्धि-विवेक से समझने की दिशा देती है।

'विवादप्रिय लोग' अथवा 'बखेरिया लोक' में कथा सामाजिक व्यवहार, कर्मशीलता और लोक-नैतिकता की भूमि पर प्रवेश करती है। गोपालबाबू स्कूल के शिक्षक-जगत में उठे विवाद से आहत हैं, क्योंकि समाज में स्वार्थ, बखरा-बोध और बखेड़ा खड़ा करने वाली प्रवृत्तियाँ साधक, संत और श्रमशील व्यक्तित्वों के महत्त्व को ढँक देती हैं। "बखेरिया लोक" वे हैं जो अपने हिस्से, स्वार्थ या अहं के लिए सामाजिक समरसता को तोड़ते हैं। मण्डलजी इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए बच्चों को कर्म, साधना और सामाजिक श्रद्धा की दिशा में ले जाते हैं।

इसी प्रसंग में रैदास का जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण बनकर सामने आता है। रैदास यहाँ केवल संत-परंपरा के श्रद्धेय नाम नहीं हैं; वे श्रम, आत्मज्ञान, संतोष और मानवीय गरिमा के प्रतीक हैं। मण्डलजी रैदास के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि मनुष्य की ऊँचाई जाति से नहीं, बल्कि साधना, श्रम, आत्मबोध और आंतरिक संतोष से बनती है। इस प्रकार कथा बाल-कथा के भीतर जाति-विमर्श, श्रम की प्रतिष्ठा, संत-परंपरा की सामाजिक प्रासंगिकता और स्वार्थी विवादों की आलोचना को सरल संवाद में प्रस्तुत कर देती है।

यहाँ संग्रह का बाल-संसार पहली बार अधिक स्पष्ट रूप से समाज-सुधार की भूमि में प्रवेश करता है। मुनीलाल और धुनीलाल केवल प्रश्न करने वाले विद्यार्थी नहीं रहते; वे सामाजिक चेतना के आरंभिक वाहक बनने लगते हैं। 'अंधविश्वास' में जहाँ विवेक और तर्क की भूमि तैयार होती है, वहीं 'बखेरिया लोक' में सामाजिक स्वार्थ, जाति-भेद, श्रम-सम्मान और साधक-परंपरा के सम्मान का प्रश्न उठता है। इस तरह संग्रह धीरे-धीरे बाल-शिक्षा से आगे बढ़कर धर्म, कर्म, समाज, श्रम और लोक-नैतिकता की व्यापक दुनिया में प्रवेश करता है।

'नव जीवन' में रैदास जयन्ती के आयोजन के बाद महादेवपुर गाँव, समाज, गोपालबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल के जीवन में आए परिवर्तन को रेखांकित किया गया है। यहाँ सामाजिक कार्यक्रम केवल बाहरी समारोह नहीं रह जाता, बल्कि आत्मसम्मान, लोक-जागरण और चेतना-परिवर्तन का अवसर बन जाता है। मण्डलजी संकेत देते हैं कि जब समाज किसी महापुरुष के जीवन का सही अर्थ ग्रहण करता है, तब उसके भीतर नए जीवन-बोध का संचार होता है। रैदास के प्रसंग से जाति से ऊपर उठकर साधना, आत्मज्ञान, श्रम, संतोष और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा सामने आती है।

इस कथा में बच्चों का संसार भी विस्तृत होता है। मुनीलाल और धुनीलाल अब केवल स्कूल के विद्यार्थी नहीं रहते; वे सामाजिक जीवन में

प्रवेश करने वाले भावी सहभागी बनते हैं। गोपालबाबू के माध्यम से वे समझते हैं कि जीवन में परिवर्तन तब आता है, जब मनुष्य हानि-लाभ, अच्छा-बुरा और कर्म की दिशा को पहचानना शुरू करता है। इस दृष्टि से 'नव जीवन' संग्रह के सामाजिक विस्तार की कथा है। यहाँ बाल-जिज्ञासा गाँव, समाज, संत-परंपरा और आत्मसम्मान से जुड़ती है। मण्डलजी के यहाँ शिक्षा का अर्थ केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि जीवन को बदलने की शक्ति जगाना है।

'प्रीति' कथा संबंधों की कठिन साधना पर केंद्रित है। गोपालबाबू और विमलबाबू के प्रसंग से कथा स्पष्ट करती है कि मतभेद संबंध-विच्छेद का कारण नहीं बनने चाहिए। जीवन में विचारों का टकराव स्वाभाविक है, पर मनुष्य की परिपक्वता इसी में है कि वह बने हुए संबंधों को समझदारी, विनम्रता और आत्मसंयम से बचाए रखे। मण्डलजी प्रेम को क्षणिक भावुकता के रूप में नहीं देखते; उनके यहाँ प्रेम जीवन-व्यवहार की सजग अवस्था है।

गोपालबाबू बताते हैं कि प्रेम बनाना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है, लेकिन बने हुए प्रेम को निभाना कठिन है। संबंधों में रूक्षता, क्रूरता और बासीपन न आने देना प्रेम की अनिवार्य शर्त है। इसलिए प्रीति का अर्थ केवल अपनापन व्यक्त करना नहीं, बल्कि उस अपनापन को निरंतर जीवित रखना है। उसमें स्थिरता भी चाहिए और गतिशीलता भी; आत्मीयता भी चाहिए और जिम्मेदारी भी। यह कथा बच्चों और वयस्कों, दोनों को समझाती है कि संबंध अपने आप सुरक्षित नहीं रहते। उन्हें विचार, विश्वास, संयम, संवाद और निरंतर आचरण से सँभालना पड़ता है।

इस दृष्टि से 'प्रीति' संग्रह की मानवीय गहराई को बढ़ाती है। 'नव जीवन' जहाँ सामाजिक चेतना और परिवर्तन का स्वर लेकर आती है, वहीं 'प्रीति' मनुष्य के संबंध-जगत को नैतिक अर्थ देती है। मण्डलजी के लिए प्रेम व्यक्तिगत भाव भर नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन को मानवीय बनाए रखने वाली शक्ति है। यही कारण है कि इस कथा में प्रीति जीवन-मूल्य बन

जाती है और मानवीय संबंध नैतिक जीवन की आधारभूमि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

'पुरुषार्थ' कथा संग्रह के शीर्षक-सूत्र की पहली स्पष्ट स्थापना करती है। विद्यालय खुला है, पर शिक्षक और विद्यार्थी कम हैं। विमलबाबू की दृष्टि में ऐसी स्थिति में बच्चों को छुट्टी देकर चले जाना सुविधाजनक है, पर गोपालबाबू इस प्रसंग को केवल व्यवस्था की समस्या नहीं मानते। वे इसे शिक्षक के अधिकार और कर्तव्य, समय और श्रम, उपस्थिति और उत्तरदायित्व, सुविधा और नैतिकता के प्रश्न से जोड़ते हैं। उनके लिए ड्यूटी केवल वेतन से जुड़ा औपचारिक दायित्व नहीं, बल्कि चरित्र की परीक्षा है।

इस कथा में गोपालबाबू बताते हैं कि मनुष्य न किसी का पूर्ण मालिक है, न किसी का पूर्ण गुलाम; वह अपने कर्म का स्वयं उत्तरदायी है। यही विचार कथा को पुरुषार्थ के गहरे अर्थ तक ले जाता है। पुरुषार्थ यहाँ केवल पुरुष होने की सामाजिक संज्ञा नहीं और न ही केवल बाहरी परिश्रम है। वह दृढ़ संकल्प, आत्मनिर्माण, कर्तव्यपालन, आत्मानुशासन और जीवन-साधना की सक्रिय शक्ति है। गोपालबाबू यह भी संकेत देते हैं कि मिथ्या दृष्टि को सम्यक दृष्टि में बदला जा सकता है और निरालम्ब व्यक्ति भी संकल्पित होकर अपना जीवन निर्मित कर सकता है।

इस दृष्टि से 'पुरुषार्थ' कथा भाग्यवाद के विरुद्ध सक्रिय जीवन-दृष्टि तैयार करती है। यह बताती है कि जीवन में परिवर्तन बाहर से थोपा नहीं जाता, बल्कि भीतर की नैतिक जागृति से शुरू होता है। मण्डलजी के लिए पुरुषार्थ कर्म, विवेक, संकल्प और आत्मबल का ऐसा संयुक्त रूप है, जिसके सहारे मनुष्य अपनी दिशा स्वयं गढ़ सकता है। यही कारण है कि यह कथा आगे आने वाली शीर्षक-कथा 'नियति और पुरुषार्थ' की वैचारिक भूमिका तैयार करती है।

'मन अटक गया' में विमलबाबू के भीतर शुरू हुए आत्ममंथन को अत्यंत सूक्ष्मता से दिखाया गया है। गोपालबाबू के विचार उनका पीछा करते हैं। वे रात भर बेचैन रहते हैं और अपने जीवन, आदतों, समय-बोध, शिक्षक-

धर्म तथा समाज में विज्ञान और धर्म के संबंध पर विचार करते हैं। उनके भीतर यह प्रश्न उठता है कि विज्ञान पढ़ने वाले को समाज धर्म-विरोधी क्यों समझता है। इस प्रकार कथा बाहरी संवाद से भीतर के संवाद की ओर मुड़ती है। यहाँ विचार केवल सुना नहीं जाता; वह मन में ठहरता है, हलचल पैदा करता है और व्यक्ति को अपने जीवन पर पुनर्विचार के लिए बाध्य करता है।

इस कथा का विशेष महत्त्व इस बात में है कि संवाद का प्रभाव केवल बच्चों पर नहीं, बल्कि एक वयस्क शिक्षक पर भी पड़ता है। विमलबाबू का मन "अटक" जाना वस्तुतः जड़ता से जागृति की स्थिति है। वे स्वयं को देखने लगते हैं, अपनी सीमाएँ पहचानते हैं और गोपालबाबू से स्पष्ट प्रश्न पूछते हैं। गोपालबाबू ज्ञान को "जानना" और आचार को "करना" बताते हैं। जब ज्ञान और आचार प्रगाढ़ होते हैं, तब वे कर्म बनकर प्रकट होते हैं। इस सूत्र के माध्यम से कथा शिक्षा को मात्र बौद्धिक अभ्यास से आगे ले जाकर जीवन-संशोधन की प्रक्रिया बना देती है।

मण्डलजी यहाँ विज्ञान और धर्म को विरोधी खेमों में नहीं बाँटते। वे दोनों को सत्य की खोज से जोड़ते हैं। उनके लिए समस्या विज्ञान या धर्म में नहीं, बल्कि मनुष्य की अधूरी समझ, रूढ़ धारणा और व्यवहारगत असंतुलन में है। इसीलिए 'मन अटक गया' संग्रह की वैचारिक गहराई को बढ़ाती है। 'पुरुषार्थ' में जहाँ कर्म और संकल्प का सिद्धांत सामने आता है, वहीं इस कथा में वही सिद्धांत आत्ममंथन, आत्मसमीक्षा और आचरण-संशोधन की प्रक्रिया बन जाता है। यह कथा स्पष्ट करती है कि मण्डलजी के यहाँ पुरुषार्थ बाहरी परिश्रम भर नहीं, बल्कि विचार, कर्तव्य, आत्मानुशासन और सत्य की खोज से निर्मित जीवन-दृष्टि है।

संग्रह की शीर्षक-कथा 'नियति और पुरुषार्थ' पूरी पुस्तक का वैचारिक शिखर है। इससे पहले की कथाओं में सुख-दुख, जीवन, अंधविश्वास, प्रीति, नवजीवन, कर्तव्य, विज्ञान, धर्म और आत्ममंथन जैसे प्रश्न क्रमशः उठते हैं; इस कथा में वे सब एक केंद्रीय जीवन-प्रश्न में समाहित

हो जाते हैं: मनुष्य का जीवन नियति से संचालित है या पुरुषार्थ से निर्मित होता है? इसीलिए यह कथा केवल संग्रह की अंतिम या शीर्षक-कथा नहीं, बल्कि पूरे कथासमूह का दार्शनिक निष्कर्ष है।

कथा का आरम्भ अत्यंत साधारण घरेलू वातावरण से होता है। गोपालबाबू दरवाजे के ओसारे पर बैठे हैं, सुशीला घर की वस्तुओं को व्यवस्थित कर रही हैं, चाय का प्रसंग है और दिनचर्या की सहज लय है। इसी साधारण जीवन-परिदृश्य में गोपालबाबू के मन में यह विचार उठता है कि मुनीलाल, धुनीलाल और विमलबाबू को पारिवारिक जीवन-दर्शन समझाना आवश्यक है। यह आरम्भ बहुत अर्थपूर्ण है, क्योंकि मण्डलजी दर्शन को पुस्तकालय, मठ या शास्त्र की बंद दुनिया में नहीं रखते; वे उसे घर, संबंध, दिनचर्या, चाय, ओसारा और आत्मीय संवाद के बीच उतारते हैं। उनके यहाँ जीवन-दर्शन जीवन से अलग नहीं, बल्कि जीवन के भीतर से ही उपजता है।

इस कथा में गोपालबाबू पहले व्यक्ति और समाज के संबंध को स्पष्ट करते हैं। वे व्यक्ति और समाज को दो अलग खानों में नहीं बाँटते। व्यक्ति समाज बनाता है और समाज व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसी परस्पर संबंध के भीतर नियति और पुरुषार्थ की दो धाराएँ चलती हैं। इस दृष्टि से मण्डलजी नियति और पुरुषार्थ को केवल दार्शनिक शब्दों के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के जीवन में सक्रिय जीवित शक्तियों के रूप में देखते हैं।

कथा का एक गंभीर पक्ष यह है कि गोपालबाबू नियतिवाद और पुरुषार्थवाद, दोनों की ऐतिहासिक जड़ों को पहचानते हैं। वैदिक परंपरा से लेकर बुद्ध, महावीर, गोशालक और आधुनिक मनोवैज्ञानिक संकेतों तक की चर्चा कथा को व्यापक वैचारिक पृष्ठभूमि देती है। बुद्ध और महावीर यहाँ केवल आध्यात्मिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि जीवन में पुरुषार्थ, साधना और व्यवहार की शक्ति के प्रतिनिधि रूप में उपस्थित होते हैं। दूसरी ओर, नियतिवाद की परंपरा यह दिखाती है कि भाग्य, पूर्वनिर्धारण और निष्क्रिय

स्वीकार की प्रवृत्ति समाज में बहुत पुरानी है। इस प्रकार कथा बाल-किशोर पाठकों के लिए लिखी गई होते हुए भी भारतीय चिंतन-परंपरा को सहज भाषा में सामने लाती है।

विमलबाबू का पात्र इस कथा में विशेष महत्त्व रखता है। वे विज्ञान के शिक्षक हैं, पर जीवन-दर्शन के प्रश्न पर स्वयं को मुनीलाल और धुनीलाल जैसा अनभिज्ञ स्वीकार करते हैं। यह विनम्रता कथा की बड़ी शक्ति है। मण्डलजी यहाँ संकेत देते हैं कि ज्ञान पद, उम्र, विषय या विद्वत्ता के बाहरी अहं से नहीं आता; ज्ञान तब आता है, जब मनुष्य अपने भीतर झाँकने को तैयार होता है। यही कारण है कि गोपालबाबू जीवन-दर्शन को आत्मदर्शन से जोड़ते हैं। उनके लिए बाहर की दुनिया को समझने से पहले अपने भीतर की स्थिति को पहचानना आवश्यक है।

कथा में नियति की आलोचना सीधे भाग्य-निंदा के रूप में नहीं आती। मण्डलजी नियति को नकारते नहीं; वे उसे जीवन की परिस्थिति, जन्म-परिवेश, सामाजिक ढाँचे और समयगत स्थिति के रूप में पहचानते हैं। पर वे उसे अंतिम निर्णय नहीं मानते। समाज में आज भी बड़ी संख्या में लोग भाग्य-रेखा देखते हैं और मानते हैं कि भाग्य में जो लिखा है, वही होगा। गोपालबाबू इस दृष्टि को पर्याप्त नहीं मानते। उनके अनुसार जीवन आगे तब बढ़ता है, जब मनुष्य में शक्तिबोध, विवेक, संकल्प और मनोबल का विकास होता है। यही इस कथा का केंद्रीय सूत्र है।

यहाँ पुरुषार्थ का अर्थ केवल बाहरी परिश्रम नहीं है। वह आत्मबोध, विवेक, संकल्प, चरित्र, मनोबल और कर्म की संयुक्त शक्ति है। मनुष्य नियति के सामने निष्क्रिय प्राणी नहीं है; वह अपने भीतर की शक्ति से जीवन की दिशा बदल सकता है। मण्डलजी के यहाँ पुरुषार्थ भाग्यवाद का विरोध मात्र नहीं, बल्कि जीवन-निर्माण की सकारात्मक प्रक्रिया है। वह मनुष्य को अपने कर्म, विचार, आचरण और संकल्प के प्रति सजग बनाता है।

इस कथा का निर्णायक महत्त्व इसी में है कि यह पूरे संग्रह की पूर्ववर्ती जिज्ञासाओं को एक व्यापक जीवन-दर्शन में संगठित कर देती है। ‘सुख

और दुख' में उठी बाल-जिज्ञासा, 'दुख और सुख' में कर्म और आत्म-जिम्मेदारी का संकेत, 'अंधविश्वास' में विवेक की माँग, 'बखेरिया लोक' और 'नवजीवन' में सामाजिक चेतना, 'प्रीति' में संबंधों की नैतिकता, 'पुरुषार्थ' में कर्तव्य और संकल्प तथा 'मन अटक गया' में आत्ममंथन- ये सभी सूत्र 'नियति और पुरुषार्थ' में आकर अपना समेकित अर्थ पाते हैं।

इसी कारण यह संग्रह बच्चों को तैयार उत्तर नहीं देता; वह उन्हें सोचने योग्य मनुष्य बनाता है। इसका उद्देश्य ज्ञान का बोझ डालना नहीं, बल्कि विचार की दिशा खोलना है। इस दृष्टि से 'नियति और पुरुषार्थ' बाल-साहित्य होकर भी जीवन-साहित्य का रूप ग्रहण कर लेता है। यह बालक, शिक्षक, अभिभावक, युवा और सजग पाठक- सभी के लिए उपयोगी है, क्योंकि यह जीवन को केवल घटना नहीं, अर्थ की यात्रा मानता है।

'नियति और पुरुषार्थ' का हिंदी रूपांतरण इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है कि यह मिथिला की लोक-संवेदना, संवादधर्मी शैली और जीवन-दर्शन को व्यापक हिंदी पाठक-समाज तक पहुँचाता है। मूल मैथिली की आत्मीयता, ग्रामीण मुहावरे, लोक-उपमान और विचार-प्रवाह को हिंदी में रूपांतरित करना सरल कार्य नहीं है। यहाँ अनुवाद को शब्द से अधिक भाव, कथ्य, लय और अर्थ-संरचना को बचाना पड़ता है। इस कृति में प्रयत्न यही है कि मण्डलजी की कथा-दृष्टि हिंदी में भी अपनी गरिमा, आत्मीयता और वैचारिक चमक के साथ उपस्थित हो।

यह पुस्तक बालकों के लिए है, पर केवल बालकों के लिए नहीं। यह शिक्षकों, अभिभावकों, युवा पाठकों और उन सभी के लिए भी है, जो जीवन को केवल घटना नहीं, अर्थ की यात्रा मानते हैं। इसमें शिक्षा है, पर उपदेश नहीं; दर्शन है, पर दुरूहता नहीं; लोकजीवन है, पर सीमित ग्रामीणता नहीं; सामाजिक प्रश्न हैं, पर नारे नहीं; आध्यात्मिक संकेत हैं, पर अंधश्रद्धा नहीं; विज्ञान की चेतना है, पर रूखा बौद्धिक अहंकार नहीं। यही संतुलन इस संग्रह को विशिष्ट बनाता है। नियति यहाँ परिस्थिति है, पर अंतिम सत्य नहीं; पुरुषार्थ यहाँ परिश्रम है, पर उससे भी अधिक आत्मजागरण, विवेक और जीवन-निर्माण की नैतिक शक्ति है।

इस संग्रह की एक विशेष रचनात्मक उपलब्धि इसका पात्र-संयोजन भी है। दसों कथाएँ अलग-अलग शीर्षकों और प्रश्नों पर केंद्रित हैं, पर वे पूरी तरह बिखरी हुई स्वतंत्र कथाएँ नहीं हैं। मुनीलाल, धुनीलाल और गोपालबाबू आरम्भ से अंत तक कथा-यात्रा को एक सूत्र में बाँधे रखते हैं। आगे चलकर विमलबाबू का प्रवेश इस संवाद-वृत्त को और व्यापक बना देता है। इस प्रकार बाल-जिज्ञासा, गुरु-मार्गदर्शन और वयस्क आत्ममंथन एक ही कथा-प्रवाह में संगठित हो जाते हैं।

यह शैली मण्डलजी की रचनात्मक सूझ का प्रमाण है। सामान्यतः कथा-संग्रह में प्रत्येक कथा अपने अलग पात्र, अलग स्थिति और अलग कथ्य के साथ चलती है; पर यहाँ वही पात्र बार-बार लौटते हैं, विकसित होते हैं, नए प्रश्नों से गुजरते हैं और पाठक को एक क्रमिक वैचारिक यात्रा में साथ ले चलते हैं। इस दृष्टि से 'नियति और पुरुषार्थ' को केवल दस स्वतंत्र कथाओं का संग्रह कहना पर्याप्त नहीं होगा। इसकी संरचना में एक प्रकार का औपन्यासिक संयम और विस्तार उपस्थित है। कथा का आकार कथा का ही रहता है, पर पात्र-संयोजन और विचार-प्रवाह उसे व्यापक कथात्मक एकता प्रदान करते हैं।

मुनीलाल और धुनीलाल बाल-जिज्ञासा के प्रतीक हैं। गोपालबाबू गुरु, शिक्षक और जीवन-दर्शी चेतना के प्रतिनिधि हैं। विमलबाबू के आने से कथा में वयस्क मन की उलझन, वैज्ञानिक दृष्टि, सामाजिक पूर्वाग्रह और आत्मसमीक्षा का पक्ष जुड़ता है। इस प्रकार संग्रह में बालक, शिक्षक और सहकर्मी, तीनों स्तरों पर जीवन-प्रश्नों की परीक्षा होती है। यही पात्र-संरचना संग्रह को विशिष्ट बनाती है। यहाँ कथा-दर-कथा विचार बदलता है, पर पात्रों की निरंतरता पाठक को एक जीवन-यात्रा का अनुभव कराती है।

इस दृष्टि से 'नियति और पुरुषार्थ' में कथा-संरचना के भीतर औपन्यासिकता का एक सूक्ष्म रूप दिखाई देता है। यह औपन्यासिकता विस्तार के बाहरी फैलाव में नहीं, बल्कि पात्रों की निरंतर उपस्थिति, संवाद की क्रमिकता, विचारों के विकास और जीवन-दृष्टि की गहराती हुई प्रक्रिया में है। मण्डलजी यहाँ कथा-संग्रह को एक संगठित वैचारिक रूप देते हैं,

जहाँ प्रत्येक कथा अपने आप में पूर्ण होते हुए भी अगली कथा की भूमि तैयार करती है। यही शिल्पगत विशेषता इस पुस्तक को सामान्य बाल-कथा-संग्रह से अलग पहचान देती है।

इस अर्थ में 'नियति और पुरुषार्थ' केवल कथा-संग्रह नहीं, बल्कि जीवन को समझने की क्रमिक यात्रा है। यह यात्रा सुख-दुख की जिज्ञासा से आरम्भ होकर कर्म, विवेक, प्रीति, सामाजिक चेतना, आत्ममंथन और अंततः पुरुषार्थ के जीवन-सत्य तक पहुँचती है। पात्र वही रहते हैं, पर प्रश्न बदलते जाते हैं; संवाद वही रहता है, पर उसका अर्थ गहराता जाता है; जीवन वही रहता है, पर उसे देखने की दृष्टि विस्तृत होती जाती है। यही इस संग्रह की रचनात्मक संगति और वैचारिक शक्ति है।

पुस्तक का केंद्रीय संदेश स्पष्ट है: नियति मनुष्य के सामने परिस्थितियाँ रख सकती है, पर मनुष्य की सार्थकता उसके पुरुषार्थ से निर्मित होती है। जीवन अपने आप महान नहीं होता; उसे विचार, श्रम, संकल्प, चरित्र और मानवीय जिम्मेदारी से महान बनाना पड़ता है। यही इस संग्रह की स्थायी उपलब्धि है। यह बाल-मन को प्रश्न करने का साहस देता है, शिक्षक को संवाद की गरिमा का स्मरण कराता है, समाज को विवेक की आवश्यकता समझाता है और मनुष्य को अपनी भीतरी शक्ति पहचानने की प्रेरणा देता है। इसलिए 'नियति और पुरुषार्थ' मण्डलजी की लोकधर्मी, मानवीय, विवेकशील और जीवनोन्मुख साहित्य-दृष्टि का सुंदर प्रमाण ही नहीं, बल्कि कथा-संरचना, पात्र-संयोजन और जीवन-दर्शन के स्तर पर उनकी परिपक्व रचनात्मकता का विश्वसनीय दस्तावेज भी है।

- अवधेश पटेल

सहायक प्राध्यापक

दर्शनशास्त्र विभाग

लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर विमेन दिल्ली विश्वविद्यालय

मो. +91 96701 65948

सुख और दुख

मुनीलाल और धुनीलाल एक ही गाँव के, एक ही हाईस्कूल के और एक ही कक्षा के विद्यार्थी हैं। हाँ, उम्र में दोनों के बीच लगभग एक वर्ष का अंतर है, फिर भी वे एक ही वर्ग में पढ़ते हैं। अब पूछा जा सकता है कि ऐसा अंतर क्यों है। इसके कारण अनेक हो सकते हैं, पर यहाँ दोनों के बीच इस अंतर का मूल कारण आर्थिक स्थिति है। हम समझते हैं कि जो व्यक्ति जितनी अधिक आर्थिक तंगी में रहता है, वह जीवन के अवसरों का उपयोग करने में उतना ही पीछे रह जाता है, और जो जितना अधिक सुविधासम्पन्न होता है, वह उतनी ही तेजी से आगे बढ़ जाता है। फिर भी इस बात को पूरी तरह न मैं मानता हूँ, न आपको मानना चाहिए, क्योंकि ऐसा भी होता है कि कहीं-कहीं कोई व्यक्ति इस सीमा को कोसी के बाँध की तरह तोड़कर अपनी धारा स्वयं प्रवाहित कर देता है। खैर, कौन क्या करता है, इसे अभी नज़रअंदाज़ कीजिए। अभी इतना ही जानिए कि उम्र में लगभग एक साल का अंतर होते हुए भी मुनीलाल और धुनीलाल एक ही हाईस्कूल की नौवीं कक्षा में पढ़ते हैं।

वसंत ऋतु का समय है। फागुन समाप्ति की ओर है और चैत की हल्की गरमाहट महसूस होने लगी है। संयोग से मुनीलाल और धुनीलाल दोनों कक्षा की तीसरी कतार की एक ही बेंच पर साथ बैठे हैं। तीसरी घंटी में हिंदी की कक्षा है।

हिंदी के प्रसिद्ध शिक्षक गोपालबाबू हैं। इसका कारण यह है कि शिक्षक दिवस, अर्थात पाँच सितम्बर को, जो डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के

जन्मदिन पर मनाया जाता है, गोपालबाबू को अच्छे शिक्षक के रूप में सम्मानित किया गया था। डॉ. राधाकृष्णन स्वतंत्र भारत के दूसरे राष्ट्रपति थे। वे राजेन्द्रबाबू के बाद राष्ट्रपति बने थे। पहले और दूसरे राष्ट्रपति में इतना अंतर तो था ही कि राजेन्द्रबाबू वकील से राष्ट्रपति बने थे और राधाकृष्णन शिक्षक, यानी प्रोफेसर से राष्ट्रपति बने थे। उन्हीं के नाम पर मनाए जाने वाले शिक्षक दिवस के अवसर पर गोपालबाबू सम्मानित हुए थे। इसलिए छात्रों, शिक्षकों और समाज की दृष्टि में भी गोपालबाबू एक प्रमाणित शिक्षक माने जाते थे।

इतना ही नहीं, गोपालबाबू स्वयं भी अपने आचरण को गंभीरता से देखने लगे थे। सम्मानित होने के बाद उन्होंने अपने कई अवगुणों को छोड़कर सद्गुणों को अपनाया और अब भी उन्हें अपनाने का प्रयास करते रहते हैं। इसी क्रम में गोपालबाबू स्वयं को कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक भी बना रहे हैं।

हिंदी की कक्षा में, अर्थात हिंदी विषय की कक्षा में, यह प्रश्न उठता है कि हिंदी को विषय माना जाए या साहित्य। सामान्य भाषा में सभी विद्यार्थी इसे हिंदी विषय कहते हैं। फिजिक्स हो या केमिस्ट्री, भूगोल हो या अर्थशास्त्र, बिजनेस मेथड हो या अकाउंट, सभी विषय हिंदी भाषा में लिखे जा सकते हैं। इसलिए भाषा और विषय की बात छोड़िए, गोपालबाबू हिंदी भाषा और साहित्य के शिक्षक हैं।

कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक होने के कारण घंटी बजने से पहले ही गोपालबाबू बार-बार सिर घुमाकर अगली कक्षा की ओर देखते रहते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं कि जैसे ही कक्षा खाली होगी, अर्थात पिछली घंटी के शिक्षक क्लासरूम से निकलेंगे, वे तुरंत अगली कक्षा में पहुँच जाएँगे। यहाँ एक बात और है। यदि दूसरी घंटी में भी उनकी कक्षा रही होती, तो परिस्थिति अलग होती, पर ऐसा नहीं था। कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक होने के कारण गोपालबाबू कक्षा में आते ही अपने कर्तव्य पर ध्यान देते और अपना काम समय से पूरा करने का अभ्यास बना चुके थे।

यहाँ एक बात और है। क्या कोई काम ठीक समय पर पूरा होना चाहिए या समय से पहले पूरा हो जाना चाहिए। इस विचार को भी पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। फिर भी इतना तो किया ही जा सकता है कि समय की गति को समझते हुए, अर्थात स्वयं को समय से तेज गति में लाकर, उसी काम को समय के हिसाब से पहले भी सँभाला जा सकता है। खैर, जो भी हो, गोपालबाबू के मन में इतनी जिज्ञासा और सजगता अवश्य थी कि जहाँ उनके कर्म की गति है, वहाँ स्वयं को चूकने देना किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। इसलिए वे स्वयं को सदैव उसी के अनुकूल बनाए रखना उचित समझकर तैयारी करते रहते थे।

कक्षा के विद्यार्थी आखिर विद्यार्थी ही होते हैं। इसलिए कभी कक्षा शुरू हो जाने के बाद और कभी कक्षा शुरू होने से पहले भी वे थोड़ी-बहुत शरारत कर ही देते हैं। लेकिन यहाँ वैसा नहीं था। गोपालबाबू की कक्षा होने के कारण वर्ग के सभी विद्यार्थी पहले से ही सावधान और जिज्ञासु भाव से बैठे थे। जैसे चिड़िया के बच्चे दाने की चाह में बार-बार आँख उठाकर अपनी माँ की राह देखते हैं, वैसे ही विद्यार्थी गोपालबाबू को देखने के लिए आँख उठाना ही चाहते थे कि गोपालबाबू हाथ में किताब लिए कक्षा में प्रवेश कर गए।

कॉलेज की तरह हाईस्कूल में हर घंटी पर हाजिरी नहीं बनाई जाती कि यह काम गोपालबाबू करते। कक्षा में आते ही उन्होंने सीधे पंतजी की कविता की पंक्तियाँ शुरू कर दीं-

"जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित है अति सुख से।"

यहाँ 'पीड़ित' शब्द थोड़ा कठोर लग सकता है, पर उसे अभी छोड़िए। अभी इतना ही समझिए कि यह जग, यानी यह दुनिया, दुख से भी पीड़ित है और सुख से भी पीड़ित है।

भरी कक्षा में बैठे विद्यार्थियों के मन में विषय का भाव जाग उठा। एक ही दुनिया दोनों अवस्थाओं में कैसे हो सकती है? प्रश्न स्वाभाविक था।

मुनीलाल का मन भी बाल-मन था और धुनीलाल का भी। लेकिन जब शिक्षक पढ़ा रहे हों, तब बीच में उठकर कुछ कहना उचित नहीं होता। इससे दूसरे छात्रों पर क्या प्रभाव पड़ा या नहीं पड़ा, यह अलग बात है, पर मुनीलाल और धुनीलाल के मन को इस प्रश्न ने आकाश में उड़ा दिया। परिणाम यह हुआ कि कविता की अगली पंक्तियाँ और उनकी व्याख्या, कान लगाए रहने पर भी, दोनों ने न ठीक से सुनी और न समझी। प्रश्न आसान नहीं था। जो दुनिया दुख से पीड़ित है, वह सुख से कैसे पीड़ित हो सकती है? और जब वह सुख से पीड़ित है, तब दुख से कैसे पीड़ित होगी?

जैसे खाली रेलगाड़ी का डिब्बा इंजन से जुड़कर स्टेशन से गुजर जाता है, पर चढ़ने वाले यात्री रास्ते में छूट जाते हैं, वही स्थिति मुनीलाल और धुनीलाल की हो गई। अर्थात जैसे किसी उतावले आदमी के सिर पर उतावला काम सवार रहता है, वैसा ही मुनीलाल और धुनीलाल के साथ हुआ। हाँ, दोनों के मन की बेचैनी अपने-अपने विचार के अनुसार अलग-अलग थी। किसके मन में उसका कौन-सा रूप था, यह न मुनीलाल धुनीलाल का समझता था, न धुनीलाल मुनीलाल का। समझता भी कैसे? सात अरब लोगों की सात अरब बुद्धियाँ, विवेक और मन हैं। यह भी माना जाता है कि दिन भर में मन साठ हजार से अधिक बार भटकता है। तब वह बुद्धि और विचार को सदा एक जगह थोड़े ही रहने देगा। ऐसा तभी हो सकता है जब बुद्धि-विवेक मन को कसकर पकड़े रहे, ताकि वह कहीं डोल-डाल न सके। खैर, जो है सो है।

कक्षा समाप्त होते ही मुनीलाल ने धुनीलाल से कहा-

“धुनी, मैं ज़रा गोपालबाबू से मिलूँगा।”

जैसे कोई किसी के मुँह की बात छीनकर अपने मुँह से वही बात कह दे, तो लोग कहते हैं कि आपने मेरे मन की बात कह दी। सहमति देते हुए धुनीलाल बोला-

“उनसे मैं भी मिलूँगा।”

फिर भी दोनों भाइयों ने जटायु की तरह सूर्य को पकड़ने के लिए

अपने पंख नहीं कटवाए। दोनों, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल, कक्षा समाप्त होते ही गोपालबाबू से मिलने के लिए उनके पीछे-पीछे चल पड़े। कुछ दूर, यानी क्लासरूम और बैठक-कक्ष के बीच, दोनों ने अपने कदम तेज किए और गोपालबाबू के पास पहुँच गए। पहुँचते ही मुनीलाल बोला-

"श्रीमान्, एक काम है।"

गोपालबाबू मन-ही-मन गायत्री मंत्र की तरह अपनी अगली कक्षा का जप कर रहे थे कि अब दसवीं कक्षा में घंटी है और आज क्या-क्या पढ़ाना है। इसी बीच मुनीलाल की बात सुनकर वे पीछे मुड़े, उसकी ओर देखा और बोले-

"अभी काम में व्यस्त हूँ, इसलिए अभी नहीं। छुट्टी होने के बाद मिलना।"

जैसे तत्काल काम न भी हो, पर यदि काम हो जाने का आश्वासन मिल जाए, तो मन में विश्वास जाग ही जाता है कि काम अवश्य होगा। वैसा ही दोनों को, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल को हुआ। पीछे लौटते हुए, यानी अपनी कक्षा की ओर आते हुए, दोनों सोचने लगे। मुनीलाल बोला-

"धुनी भाई, अच्छा ही हुआ।"

लेकिन धुनीलाल का मन टूटने जैसा हो गया था। कारण यह था कि छुट्टी, आखिर छुट्टी ही होती है। वह जैसे काम को विराम दे देती है और जीवन की गति को कुछ समय के लिए थाम देती है, वैसे ही कभी-कभी काम के महत्व को और अधिक गहरा भी बना देती है। धुनीलाल का मन इसलिए टूटने जैसा हो गया था कि जैसे असीम प्यासे को पानी मिलने पर असीम संतोष होता है, वैसे ही पानी न मिलने पर गहरा असंतोष भी होता है। वही स्थिति धुनीलाल की थी।

उधर गोपालबाबू का मन भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता से भर उठा था। वह हरितिमा की तरह फैलती हुई संतुष्टि से अपना मानो नया रूप गढ़ रहा था। जैसे जनेऊ धारण करने से पहले उसे विधिपूर्वक गाँठा जाता है, या जैसे किसी विशाल वन में अचानक कोई नया फूल या फल दिखाई दे जाए,

वैसे ही उनके भीतर एक नया भाव आकार लेने लगा। अचानक गोपालबाबू की दृष्टि के सामने अँधेरे और उजाले की सीमा पर टिमटिमाते जुगनू की तरह कुछ चमकने लगा।

कक्षा समाप्त होते ही गोपालबाबू ऑफिस रूम से निकले और चार सौ विद्यार्थियों के बीच मुनीलाल और धुनीलाल को खोजने लगे। जैसे कोई प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से मिलने के लिए लाखों लोगों की भीड़ में भी एकाग्र होकर उसी को खोजते रहते हैं, वैसे ही गोपालबाबू दोनों को खोज रहे थे। उधर मुनीलाल और धुनीलाल भी उनसे मिलने के लिए उन्हें ही तलाश रहे थे। तीनों की दृष्टि जैसे ही एक-दूसरे से मिली, गोपालबाबू आगे बढ़े और मुनीलाल तथा धुनीलाल भी उनके पास पहुँच गए।

दोनों को देखते ही गोपालबाबू को लगा कि उनके मन किसी गहरी जिज्ञासा से व्याकुल हैं। वर्षा के जल की तरह सहज स्वर में वे बोले-

"बौआ, जैसे भूख-प्यास तुम्हें लगी है, वैसे ही मुझे भी लगी है। इसलिए तीनों साथ-साथ डेरे पर चलो। वहाँ पहले कुछ खाएँगे और चाय पीएँगे, फिर बातचीत करेंगे।"

दोनों को जैसे एक साथ शारीरिक और मानसिक तृप्ति मिल गई। इसलिए दोनों एक स्वर में बोले-

"बहुत अच्छा।"

डेरे पर पहुँचते ही गोपालबाबू ने मुनीलाल और धुनीलाल को दरवाजे के ओसारे की चौकी पर बैठाया और स्वयं चापाकल पर हाथ-मुँह धोकर तरोताजा होने लगे। वे अपने थके शरीर और मन को नई ऊर्जा देने में जुट गए, पर उनका ध्यान दोनों विद्यार्थियों पर भी बना रहा। वे देख रहे थे कि बच्चे इस जगह को अपना घर समझकर सहज हैं या अब भी संकोच में केवल उनकी ओर देख रहे हैं।

भाई, दुनिया तो दुनिया ही है। सब जानते हैं कि धारा पार करते समय कहा जाता है- "खोलो धरिया, उतरो पार, इस नदी का यही व्यवहार।" दूसरी ओर यह भी कहा जाता है- "शीश दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।"

अब इसे ऐसे समझिए कि अगहन महीने में खेत से पके धान की बालियाँ लाकर, उन्हें छोटी-सी गठरी में सजाकर, मकर संक्रांति के मेले में महादेव बाबा को अर्पित किया जाता है।

यदि परिवार के लोग परिवार के नियमों को समझकर जीवन जीते हैं, तो परिवार का संचालन स्वाभाविक रूप से संतुलित ढंग से आगे बढ़ता है। गोपालबाबू की पत्नी भी एक आदर्श मैथिलानी के गुणों से सम्पन्न थीं। वे मिथिला की परम्पराओं, विधि और व्यवहार से भली-भाँति परिचित थीं। अब कोई यह कह सकता है कि विधि-व्यवहार तो हर जगह का विधि-व्यवहार होता है, इसमें मिथिला विशेष क्या है। जैसे भोजपुर की बरी हो या अल्लापुर की, बरी तो बरी ही कहलाएगी।

आप अपने मन से उसे कुछ भी कह सकते हैं, इसके लिए कोई रोक नहीं है। फिर भी लोग इतना अवश्य कहेंगे कि बरी के जन्म का जो बीजरूप है, जिसे हिंदी में बीज और मैथिली में बीआ या बीहैन कहा जाता है, उसे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग नामों से पुकारा जाता है। खैर, हर व्यक्ति अपनी भाषा को अपनी भाखा बना लेता है। मिथिला को बरी की जन्मभूमि माना जाता है। यहाँ जल में खिलने वाला कमल, जिसकी जड़ की नोक को बिसाँढ़ कहा जाता है और जो गरीब का भोजन भी बनता है, उसी पौधे पर बरी फलती है। जैसे दधीचि ऋषि की हड्डियों से देवताओं ने अस्त्र बनाकर असुरों को पराजित किया था, वैसे ही कमल ने अपने उपयोग और स्वरूप से बरी को पहचान और मान्यता दी।

खैर, जो है सो है। लेकिन मुनीलाल और धुनीलाल अपनी चाय और जलपान को जैसे भूल गए थे, वैसे अपने प्रश्न को नहीं भूल पाए थे। उनके मन में बार-बार वही बात उठ रही थी कि जग दुख से भी पीड़ित है और सुख से भी।

मुनीलाल बोला-

"श्रीमान्, जब जग दुख और सुख दोनों से पीड़ित है, तब मनुष्य क्या हुआ, दुखी या सुखी?"

मुनीलाल का प्रश्न सुनकर गोपालबाबू के मन में हल्की मुस्कान उभरी, लेकिन वे खुलकर हँसे नहीं। यह बात सब जानते हैं कि हँसी भी एक विचित्र भाव है। लोग अच्छी बात पर भी हँसते हैं और कभी-कभी बुरी बात पर भी नहीं हँसते। इसलिए इसे पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता।

गोपालबाबू बोले-

"बौआ, आज इतना ही समझो कि जैसे दुख की सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे ही सुख की भी सीढ़ियाँ होती हैं। जैसे दुख के अनेक रंग हैं, वैसे ही सुख के भी अनेक रंग हैं। आगे इस पर फिर बात करेंगे।" ❑

दुख और सुख

☰

आज पन्द्रहवाँ दिन था। मुनीलाल, धुनीलाल और गोपालबाबू के बीच कोई ढंग की बातचीत नहीं हुई थी। जैसे प्रेमी-प्रेमिका के बीच, या दो सहयोगी मनुष्यों के बीच, मिलने के बाद फिर न मिल पाने पर, अथवा मिलने में देर होने पर छटपटाहट उठ ही जाती है, यहाँ भी वैसा ही कुछ था।

इसे यह न समझा जाए कि दो सहयोगियों या प्रेमियों के बीच समुद्र के ज्वार की तरह यह भाव उठता है कि मैं जीता, तो मैं जीता। कौन जीता, यह तो भविष्य बताएगा, पर वर्तमान में जीत की आशा आती ही है। खैर, जो आता है या जाता है, उसे आने वाला जाने और जाने वाला जाने। प्रेमी-प्रेमिका जानें और सहयोगी-सहयोगी जानें।

आरम्भ से ही दुनिया में आश्चर्यों की एक लंबी शृंखला रही है। सब जानते हैं कि वृक्षों की रगड़ से आग उठी, और उसने बड़े-बड़े जंगलों को जलाकर खेत बना दिए। आज भी देश के पूर्वांचल में, पहाड़ी और जंगली इलाकों में, झूम पद्धति से खेती होती है। अर्थात पहाड़ी जमीन पर उगे जंगल-झाड़ को जलाकर, उससे बनी राख पर खेती की जाती है।

केवल आग की उत्पत्ति हो जाने से आश्चर्य की सीमा समाप्त हो गई, ऐसी बात नहीं है। आश्चर्य की एक लंबी शृंखला है। लेकिन जिस शृंखला को हम इतिहास के रूप में देखते हैं, उससे अलग आश्चर्य की एक दूसरी शृंखला भी है।

वह यह है कि एक ओर जन्म से समझिए और दूसरी ओर धरती पर मनुष्य की पूरी आयु तक, चाहे उसे मोटे तौर पर चार सौ वर्ष की स्मृति-

सीमा तक ही क्यों न मान लें। अर्थात कच्ची उम्र, जो बीस वर्ष से पहले की होती है, और बीस वर्ष से ऊपर की अवस्था, अधपकी उम्र से बुढ़ापे तक, या कच्चे से पके तक। यह अंतर हम समझते भी हैं और देखते भी हैं।

जैसे कच्चे आम की चटनी बनती है, अधपके और डम्हाए आम का अचार बनता है, और पके आम को भी, चाहे छिलके सहित ही सही, लोग खाते हैं। मनुष्य का भी ऐसा ही है। बाल-बोध से चेष्टाशील, सयाना, जवान, अधेड़ और बूढ़े तक सभी हैं। इसलिए विचार चाहे जो भी हों, जीवन तो एक ही है। सबका अपना-अपना जीवन है।

इतने जीवनों के बीच कितने लोग जीवन को जीवन समझकर जी रहे हैं और कितने उसे अजीवन बनाकर जी रहे हैं। यही आश्चर्य की दूसरी श्रृंखला है कि जीवन जीने वाले भी जीवन को पूरी तरह समझ नहीं पा रहे हैं। यह अपने-आप में आश्चर्य की घटना है ही।

खैर, जो हुआ या जो हो रहा है, उसे दुनिया और दुनिया वाले जानें। उससे गोपालबाबू या मुनीलाल-धुनीलाल को क्या मतलब?

स्कूल से आने के बाद, ओसारे की कुर्सी पर बैठे-बैठे गोपालबाबू के मन में उठा कि आज पन्द्रह दिन हो गए मुनीलाल और धुनीलाल से ठीक से भेंट हुए। यों स्कूल की कक्षा में दोनों को देखता हूँ, पर न मैं कुछ कहता हूँ और न वे लोग पास आते हैं। जब कोई समस्या सामने आती है, तभी तो उसके समाधान के लिए कोई समाधान करने वाला सँभलकर उठ खड़ा होता है।

तभी गोपालबाबू के मन में तीसरा विचार उठ खड़ा हुआ। वह यह कि उनके अपने मन ने कहा- दुनिया में सहयोगी वही होता है जो अपने सहयोगी के सभी विचारों को माने या न माने, पर यदि दोनों के बीच का रास्ता पकड़कर चले, तो जीवन आज नहीं तो कल अवश्य मिल जाएगा। गोपालबाबू के मन में तृप्ति जागी, और उसी से श्रद्धा भी जाग उठी।

जैसे मुनीलाल, वैसे ही धुनीलाल भी अपने-अपने मन में सोच रहे थे कि जिस विद्यालय, यानी हाईस्कूल में गोपालबाबू शिक्षक हैं, उस विद्यालय

में चार सौ विद्यार्थी हैं। उनमें एक विद्यार्थी का हिस्सा, अर्थात छुट्टी के समय का हिस्सा, महीने में एकाध घंटा ही होगा, बस इतना ही। ऐसे में यदि पन्द्रह दिनों से उनसे भेंट नहीं की, तो ठीक ही किया।

भाई, चाँद और चकोरी के मिलन में यह भी तो देखना पड़ेगा कि एक आकाश में है और दूसरी धरती पर। धरती और आकाश के बीच कितनी दूरी है, यह तभी समझ में आएगा, जब प्रकृति की त्रिगुणात्मक चाल को देखकर अपनी चाल भी बनाई जाए। पर धरती पर रहने वाले लोगों के लिए यह कठिन तो है ही। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यही शक्ति राक्षस नहीं बनाती, केवल मनुष्य ही बनाती है और देवता नहीं बनाती।

एक ही लोहे से रॉकेट भी बनता है, बंदूक भी बनती है और हँसुआ-खुरपी भी बनती है; इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता। खैर, जो भी कहा जाए, मुनीलाल और धुनीलाल ने आपस में विचार किया। विचार यह किया कि आज दोनों भाई साथ में गोपालबाबू के डेरे पर चलें। यदि हमें समय मिलेगा, तो बहुत अच्छा। समय मिलने का अर्थ यह हुआ कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति उनके पास होगा, तब तो नहीं; पर यदि वे अकेले होंगे, तब समय क्यों नहीं मिलेगा? अवश्य मिलेगा।

यही सोचकर दोनों स्कूल से आने के बाद घर गए, जलपान किया और डेरे की ओर जाने वाले रास्ते से आकर जब गोपालबाबू के दरवाजे की ओर देखा, तो गोपालबाबू को अकेले बैठे पाया।

जैसे मुनीलाल और धुनीलाल ने गोपालबाबू को अकेले बैठे देखा, वैसे ही गोपालबाबू ने भी रास्ते पर चलते हुए बटोही के रूप में मुनीलाल और धुनीलाल को देखा। देखते ही उनके मन में हुआ कि उन्हें पुकारें, पर उनके अपने शिष्ट मन ने विचार दिया कि यह शिष्टाचार से अलग बात होगी। शिष्टाचार से अलग इसलिए कि यदि वे परिवार या समाज का कोई काम करने जा रहे हों, तब बीच में बाधा पहुँचाना ठीक नहीं होगा। दूसरी बात यह भी तो है कि अपनी ओर से पहले कितना बोला जाए? सबको हर बात अनुकूल नहीं होती।

गोपालबाबू मन-ही-मन विचार कर ही रहे थे कि इसी बीच मुख्य सड़क से उतरकर दोनों ने गोपालबाबू के डेरे की ओर का रास्ता पकड़ लिया। यहाँ एक प्रश्न है कि डेरा और घर क्या हुआ? डेरा वह हुआ जहाँ कुछ दिनों के लिए रहा जाता है। घर वैसा नहीं होता। वह केवल एक पीढ़ी के जीवन का नहीं, बल्कि एक वंश के रहने का स्थान होता है।

गोपालबाबू के दरवाजे से दस कदम पहले ही मुनीलाल और धुनीलाल, दोनों ने अपने-अपने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा-

"प्रणाम गुरुदेव।"

'गुरुदेव' सुनते ही गोपालबाबू का मन उड़कर कबीरदास की साखी तक पहुँच गया-

"गु अन्धिआरी जानिये, रु कहिये परकास। मिटै अज्ञानता ज्ञान ते, गुरु नाम है तास।"

उड़ते हुए विचार को धरती पर खड़ा करते ही गोपालबाबू के मन का विचार बदल गया। यह बदला कि शायद दोनों विद्यार्थियों में नम्रता का उदय हो रहा है, इसलिए उन्होंने विनम्र शब्द का प्रयोग किया है। कहा भी तो जाता है कि किसी पर जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही विश्वास भी होता है। एक शब्द में इसे श्रद्धायुक्त विश्वास या श्रद्धापूर्ण विश्वास भी कहा जा सकता है।

खैर, जो भी कहिए, एक हाईस्कूल शिक्षक का जो रूप होता है, उसी के अनुकूल गोपालबाबू आशीर्वाद देते हुए बोले-

"रास्ते पर जब मैंने तुम दोनों को दक्षिण की ओर बढ़ते देखा, तब लगा कि किसी काम से कहीं जा रहे हो। लेकिन जब रास्ते से उतरकर इस ओर आते देखा, तब समझ गया कि तुम यहीं आ रहे हो।"

मुनीलाल और धुनीलाल, दोनों का मन बाल-मन था। इसलिए अपने निष्कपट विचार व्यक्त करते हुए दोनों एक साथ बोल पड़े-

"गुरुदेव, जिस दिन आपके डेरे पर आकर जीवन की बातचीत की थी, उसी दिन से मन बेचैन हो रहा था कि किसी दूसरे दिन फिर आएँ।

लेकिन आप तो चार सौ से अधिक विद्यार्थियों के गुरु हैं। उसमें हमारे हिस्से का समय कितना होगा? इसी कारण हम नहीं आ रहे थे।"

दोनों की बात सुनकर गोपालबाबू आह्लादित हो उठे। आह्लादित होते ही उनके मन में उठा कि अवश्य ही दोनों के मन में जीवन के प्रति जिज्ञासा है। यों जिज्ञासा कई प्रकार की होती है। वह सबके मन में रहती भी है और जागती भी है, पर जीवन की जिज्ञासा का जागना सबसे अच्छा है।

दुनिया में रहने की इच्छा केवल पंचभौतिक मनुष्य में ही नहीं, धरती पर जन्म लेने वाले हर जीव की इच्छा में निहित रहती है, जबकि वह यह भी जानता है कि जब धरती पर जन्म लिया है, तो मरना अनिवार्य है। यह सबको पता है कि राम जैसा पुत्र रहते हुए भी दशरथ मर गए, अर्थात राम भी उन्हें बचा नहीं सके। कृष्ण जैसे मामा और अर्जुन जैसे पिता रहते हुए भी अभिमन्यु कच्ची उम्र में मर गया।

अभी महाभारत की चर्चा करने का समय नहीं है, नहीं तो कहता कि श्रीकृष्ण और पाण्डव अमरकंटक कैसे गए, पद्मनाभ ने द्रौपदी का हरण कैसे किया, दोनों के बीच युद्ध में पाण्डव कैसे हारे और कृष्ण के कहने पर फिर युद्ध होने पर कैसे जीते।

दोनों के विचार, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल के विचार सुनकर गोपालबाबू का मन सँभल गया। सँभलने का कारण यह था कि नौवीं कक्षा के बच्चे इससे अधिक सोच ही क्या सकते हैं। इसलिए प्रश्न पूछने से अच्छा होगा कि अपना उत्तर दिया जाए। विचार की शैली बदलते हुए गोपालबाबू बोले- "बौआ, और क्या हाल-चाल है?"

'हाल-चाल' सुनते ही दोनों के मन में विचार का बीज अंकुरित हो गया। इससे दोनों एक साथ बोलने लगे। दोनों को एक साथ बोलते देखकर गोपालबाबू ने हाथ के इशारे से दोनों को चुप कराते हुए कहा-

"बारी-बारी से दोनों बोलो।"

यों दोनों के मुँह चुप हो गए, पर पहले बोलने के लिए दोनों के मन में लुसफुसाहट बनी रही। गोपालबाबू का मन भीतर-ही-भीतर जुड़शीतल में

सिर पर चढ़ाए गए जल को पाकर जैसे शीतल हो रहा था, पर उन्होंने अपने को संयमित कर लिया।

जैसे मुनीलाल बोलने में स्पष्ट था, वैसे ही चटपटिया भी था। लेकिन धुनीलाल में वह गुण नहीं था। उसमें स्थिर होकर बोलने की स्वाभाविक कला थी। हड़बड़ाकर मुनीलाल ने अपना विचार पहले रखते हुए कहा-

"गुरुदेव, सुख क्या है और दुख क्या?"

मुनीलाल के प्रश्न को गोपालबाबू ने मन की डायरी में पहले नम्बर पर नोट कर लिया। इसी बीच मुनीलाल के प्रश्न उठाने के बाद जैसे ही विराम आया, धुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति क्या है?"

दोनों के प्रश्न सुनकर गोपालबाबू ने मन-ही-मन विचार को संतुलित करते हुए कहा-

"यह भी वैसा ही है, जैसे जीवन और मृत्यु।"

बोलते-बोलते गोपालबाबू बीच में चुप हो गए। चुप होने का कारण यह था कि जब वे पीछे लौटकर अपने विचार की ओर देखने लगे, तब उनके अपने मन ने मान लिया कि सामने बहुत अधिक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। भाई, बड़े बैंक में तो मोटे रुपये की गिनती होती है, लेकिन जहाँ एक-एक पैसे की कमाई और खर्च का हिसाब है, वहाँ की परिस्थिति भी अलग ही होगी।

मन-ही-मन जब गोपालबाबू ने प्रश्नों का अँटकार लगाया, तो अपने ही मन में अटकने लगे कि एक ओर जीवन के सुख-दुख और दुख-सुख का प्रश्न है, तो दूसरी ओर प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति का। इसी तरह एक ओर जीवन का प्रश्न है, तो दूसरी ओर जीवन के उद्देश्य का भी प्रश्न होगा ही।

पोखर के पानी की तरह गोपालबाबू ने अपने मन को स्थिर किया। इसी बीच मुनीलाल बोल उठा-

"गुरुदेव, पहले सुख-दुख की चर्चा कीजिए। उसके बाद दुख-सुख

और दूसरे प्रश्नों पर विचार करेंगे।"

मुनीलाल के विचार से गोपालबाबू का अपना विचार भी मिल गया। यह मिलन इस बात में था कि जैसे बूँद-बूँद पानी से सागर बना है, वैसे ही बूँद-बूँद जीवन से यह संसार बना है। तब उसके बीच से एक बूँद को निकालना कोई बाल-बोध का खेल नहीं है। पर जब बाल-मन में कोई विचार उठ गया हो, तब उसे सीधे ढँक देना वैसा ही है, जैसे धधकती आग को मिट्टी-धूल से ढँक देना।

दोनों नौवीं कक्षा के विद्यार्थी हैं, थोड़ी-बहुत संस्कृत भी पढ़ते हैं। इसलिए अच्छा होगा कि संस्कृत के श्लोक से ही अपना विचार उठाया जाए। यह तो अच्छा विचार ही है कि अपने संस्कार और संस्कृति का स्मरण कराते हुए जीवन और जीवन के उद्देश्य की चर्चा की जाए। तब वह हिमालय से निकली जलधारा की तरह पत्थर को सींचते हुए धरती के मुख में भी अमृत देती है।

गोपालबाबू बोले-

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता। परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। अहं करोमीति वृथाभिमानः। स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः।"

सुख-दुख किसी को कोई नहीं देता। यह मानना कि कोई दूसरा किसी दूसरे को सुख-दुख देता है, यही कुबुद्धि है। महावीर ने भी कहा है कि आत्मा ही सुख की कर्ता है और आत्मा ही दुख की कर्ता भी है।

बोलते-बोलते गोपालबाबू भाव-विह्वल होकर आगे बढ़ गए। लेकिन जब पीछे लौटकर अपने विचार को टटोला, तब उन्हें लगा कि वे बहुत आगे बढ़कर बोल रहे हैं। जैसे महाभारत के रणक्षेत्र में कृष्ण ने सातों घोड़ों वाले रथ की लगाम एक साथ पकड़कर खींच ली थी, वैसे ही मन-ही-मन अपने विचार के प्रवाह को एक साथ खींचते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ सभ, इसी तरह सम्बन्ध बनाए रखना। जैसे दुनिया अथाह है, वैसे ही मनुष्य भी उसकी थाह लेने के लिए तैयार है। इसी तरह आते-जाते रहना। कुछ-न-कुछ बातचीत होती रहेगी। यों बातचीत की कोई निश्चित

आड़-धूर नहीं होती, पर जीवन की धारा में उसे अड़ाया जा सकता है।”

‘आते-जाते रहना’ सुनकर जैसे मुनीलाल के मन में जिज्ञासा जागी, वैसे ही आशाभरी जिज्ञासा धुनीलाल के मन में भी जागी। धुनीलाल बोला-

“गुरुदेव, हम रोज आएँगे।”

अपना निर्धारित समय बताते हुए गोपालबाबू बोले-

“स्कूल का समय स्कूल में बीतता है। बाकी समय मैं डेरे पर रहता हूँ।” ❑

जीवन क्या है और जीवन का उद्देश्य क्या है?

☰

संयोग कहिए या समय की गति, जैसे गोपालबाबू का मन मुनीलाल और धुनीलाल से बनते सम्बन्ध के कारण तृप्ति से भर रहा था, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल के मन में भी गोपालबाबू से बने सम्बन्ध में प्रियता आ जाने से तृप्ति जाग रही थी।

अँधेरे और उजाले की सीमा पर जैसे मुनीलाल और धुनीलाल खड़े हो गए थे। जुगनू की लीला की तरह दोनों के मन में कभी अँधेरे से उजाला आता, तो कभी उजाले से अँधेरा उतर आता। यह स्वाभाविक भी है। जब जीवन में कोई आवश्यक काम सामने आता है, तब उसे क्रियाशील रूप देने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। वह दोनों धरातलों पर चलती है, विचार के धरातल पर भी और जीवन-भूमि पर भी।

खैर, जो होता है, उससे गोपालबाबू या मुनीलाल-धुनीलाल को क्या मतलब? मतलब इस बात से है कि जैसे गोपालबाबू मन-ही-मन रत्न की प्राप्ति देख रहे थे, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल भी अपने-अपने जीवन की प्राप्ति देख रहे थे।

विचार-विमर्श के बाद जब मुनीलाल और धुनीलाल गोपालबाबू के यहाँ से विदा होने लगे, तब जैसे मुनीलाल और धुनीलाल के मन में, वैसे ही गोपालबाबू के मन में भी प्राप्ति की करुण संवेदना जाग गई। जीवन 'जीवन' है, कोई ठट्ठा नहीं। सात अरब लोगों की बुद्धि और विवेक के बीच जीवन

आज भी पहेली बना हुआ है, पर कोई उसकी थाह नहीं पा रहा है।

वही है जीवन? जीवन बहुत बड़ा विज्ञान है। उसे सदा समझने का प्रयास करना चाहिए। जिसने जीवन को जान लिया, उसके लिए जीवन वरदान बन गया, और जो जीवन को नहीं जान सका, उसके लिए जीवन अभिशाप ही बना रहा।

रात में भोजन करने के बाद गोपालबाबू जब बिछावन पर पहुँचे, तो अचानक मुनीलाल और धुनीलाल उनके मन में नाच उठे। नाचते मन में कबीरदास की पंक्ति उतर आई-

"गुरु तो ऐसा चाहिये, शिष से कुछ न लेय।

शिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब किछु देय।"

पंक्ति के शब्द मन में उतरते-उतरते गोपालबाबू का हृदय पसीज गया। जब जिज्ञासु व्यक्ति की जिज्ञासा जागती है, तब पथ-प्रदर्शन के लिए पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता हो ही जाती है। यदि अपनी जिंदगी के साथ दूसरे की जिंदगी को भी जिंदगी बना सकें, तो यही दुनिया की सबसे बड़ी कारीगरी है।

अचानक गोपालबाबू को ऐसा लगा, जैसे उन्हें जीवन की कोई जड़ी मिल गई हो। हम सब देखते भी हैं और कहते भी हैं कि जीवन का बीजरूप देखिए। इतिहासकार भी एक काल का नाम 'बीजवपन काल' लिखकर बताते हैं। इससे एक कालखंड की संरचना खड़ी हो जाती है।

एक ओर जैसे गोपालबाबू के मन में मुनीलाल और धुनीलाल नाच रहे थे, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल की भावभूमि में भी कबीरदास की पंक्ति का भाव आकार ले रहा था। कबीरदास की वह पंक्ति थी-

"साँचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।

चंचल से निश्चल भया, नइ आवे नइ जाय।"

एक ओर बिछावन पर पड़े मुनीलाल और धुनीलाल का मन जैसे छटपटा रहा था, वैसे ही दूसरी ओर गोपालबाबू का मन भी छटपटा रहा था।

हाँ, जैसी एकाग्रता का अभ्यास गोपालबाबू में बन चुका था, वैसा मुनीलाल और धुनीलाल में नहीं बना था। इसलिए दुनिया को देखने की दृष्टि में अंतर तो था ही।

संयोग कहिए या समय की गति, अगले दिन रविवार था। जैसे गोपालबाबू पूरी तरह काम, अर्थात ड्यूटी से मुक्त रहने वाले थे, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल भी। गोपालबाबू की वह बात दोनों को याद थी, जिसमें उन्होंने कहा था-

"छुट्टी के दिन का समय स्वतंत्र होता है, इसलिए जब इच्छा हो, तब आ सकते हो।"

दोनों ने, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल ने, अपने मन को अगले दिन की आशा पर टिकाकर रात बिताई और सो गए।

भोर होते ही मुनीलाल धुनीलाल के यहाँ पहुँचा। मुनीलाल को देखकर धुनीलाल ने अपने विचार को स्वर देते हुए कहा-

"भाई, अच्छा है कि आज छुट्टी का दिन है। जैसे गोपालबाबू खाली रहेंगे, वैसे ही हम लोग भी हैं। इसलिए वहीं, यानी गोपालबाबू के यहाँ चलना अधिक उपयोगी होगा।"

यों गोपालबाबू की अपनी एक नियमित दिनचर्या थी। वे मौसम के अनुसार अपनी जिंदगी को ढालकर चलते थे। जैसे गरमी के महीने में शरीर के कपड़े अधिक मैले होते हैं, उतने जाड़े में नहीं होते। दूसरी बात यह कि यदि गरमी के मौसम के अनुकूल जीवन को व्यवस्थित कर आवश्यक काम पूरे किए जाएँ, तो वह अधिक अच्छा होता है। यही सोचकर गोपालबाबू गरमी के दिनों में भोर-भोर अपने कपड़े धोते थे।

अपने नियमित समय के अनुसार गोपालबाबू दरवाजे की कुर्सी पर बैठे सामने की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे कि तभी उन्होंने मुनीलाल और धुनीलाल को मुख्य सड़क से उतरकर डेरे की ओर का रास्ता पकड़ते हुए तेज कदमों से आते देखा। बातचीत करने का मन उनका भी बना हुआ था। दोनों को देखकर उनका मन जुड़शीतल की तरह शीतल हो गया।

थोड़ी दूर से ही मुनीलाल गोपालबाबू के दरवाजे के सामने कपड़े सुखाने के लिए लगाए गए बाँस के ढाठ पर अपनी दृष्टि दौड़ा रहा था। वह इसलिए देख रहा था कि शायद गोपालबाबू आज का काम सूरज निकलने से पहले ही पूरा कर चुके हैं। अधिकतर नौकरीपेशा लोग, विशेषकर वे लोग जो अपने उपयोग के कपड़े स्वयं धोते हैं, ऐसा ही करते हैं। जो दूसरों के हाथ से धुले कपड़े पहनते हैं, उनकी चर्चा अलग है।

हम यहाँ गोपालबाबू जैसे शिक्षक की चर्चा कर रहे हैं। बोलने में तो सभी शिक्षक कहते हैं कि हम सब एक हैं, पर काम में कमी-बेशी है या नहीं, यह वे स्वयं ही बेहतर जानते होंगे। गोपालबाबू जैसे लोग केवल गोपालबाबू ही नहीं हैं, समाज में बहुत हैं। वे सभी गुणों में श्रेष्ठ हों, भगवान जैसे हों, ऐसा भले न हो; पर छोटे-छोटे गुणों में भी वे आगे नहीं हैं, ऐसा कहना भी उचित नहीं होगा।

गाँव में छन्ठा पंडीजी हैं। वे भोर में तीन बजे पूजा करते हैं। आप कहेंगे कि तीन बजे तो रात होती है, फिर उसे आज की पूजा कैसे माना जाए? पर वे आपका विचार थोड़े ही मानेंगे। वे अपने मन, बुद्धि और विवेक के साथ अपने आत्माराम के भक्त भी हैं। उनकी मान्यता है कि रात के अंतिम पहर से ही रात दिन में बदलने लगती है। इसलिए वे पौने तीन बजे ही उठकर अपने शरीर को स्वच्छ करते हैं और पूजा पर बैठ जाते हैं। उनकी पत्नी भी वैसी ही हैं। पंडीजी के पूजा पर बैठने से पहले ही लक्ष्मी पूजा का सारा सामान तैयार कर देती हैं।

पूजा समाप्त होते-होते धूपबत्ती भी समाप्त हो जाती है। इसलिए वे धूपदानी को सबसे पहले रखकर वह काम पूरा कर लेते हैं, जिसे अधिकांश लोग आठ-नौ बजे करते हैं और जो उनके हिसाब से अभी 'कल' का काम ही माना जाएगा।

कर्म करने वाले के सामने कबीर बाबा भी कहीं-न-कहीं पीछे रह जाते हैं। पीछे इस बात पर कि जीवन-क्रिया की शुरुआत आज से मानी जाए या कल से। कल का अर्थ दोनों होता है, आने वाला भी और बीत चुका भी।

आवश्यकता दोनों की है। खैर, जो है सो है।

मुनीलाल दरवाजे के ढाठ पर फैले गोपालबाबू के कपड़ों की ओर आँख गड़ाकर देखने लगा। उसने गोपालबाबू के आज के व्यवहार को देखा। उसके मन में उठा कि इतना तो गोपालबाबू का आशीर्वाद सिर पर चढ़ ही गया है कि दूसरों से भिन्न अपने व्यवहार में मैंने सुधार किया है। स्कूल जाने के अलावा यदि किसी भी काम से कहीं जाता हूँ, तो माँ-बाप को अवश्य जानकारी दे देता हूँ। ऐसा नहीं कि कोई बात महीने भर बाद माँ-बाप को पता चले।

एक ओर मुनीलाल की आँख कपड़ों पर अटकी थी और दूसरी ओर उसके दोनों पैर दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे। लगभग एक डग पहले ही मुनीलाल और धुनीलाल ने अपने-अपने दोनों हाथ जोड़ लिए। जैसे कुछ माँगने आए हों, वैसे ही गोपालबाबू के पास पहुँचकर बोले-

“गुरुदेव, आज रविवार की छुट्टी के कारण...।”

मुनीलाल के मन की बात ठीक से मुँह से निकल भी नहीं पाई थी कि बीच में ही गोपालबाबू बोल पड़े-

“बौआ, पहले आँगन में जाकर चाची से कहो कि चाय पीने का मन है।”

यों आँखों से देखा हुआ भी झूठ होता है, यह बात सबके सामने है। हम रोज देखते ही हैं। गोपालबाबू की पत्नी सुशीला, गोपालबाबू की परम भक्त थीं। वैसे भक्त भी चार प्रकार के होते हैं, पर यहाँ वह चर्चा आवश्यक नहीं। यह पति-पत्नी के सम्बन्ध की स्वाभाविक आत्मीयता के अनुकूल था।

परिवेश ऐसा बन गया है कि जिन खेत-पथारों के लिए समाज में दिन-रात गाली-गलौज और मार-पीट होती थी, वही खेत आज मूल्यहीन होते जा रहे हैं। गाँव और शहर के बीच के जीवन में खेत-पथार की स्थिति सबके सामने है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि भाई-बंधुओं के साथ माँ-बहनें अब भी अपने होंठों पर यह नहीं रखतीं कि हम सब दुनिया के गुरु हैं। खैर, जो भी हो।

कुशल-समाचार होने के बाद सब लोग, अर्थात गोपालबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल, त्रिकोण की तरह एक जगह कुर्सियों पर बैठ गए। गोपालबाबू बोले-

"बौआ, तुम लोगों का कल का प्रश्न उधार लगा हुआ है, इसलिए पहले उसी का उत्तर देता हूँ।"

दोनों, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल, मन-ही-मन कल का प्रश्न खोजने लगे, पर उन्हें याद नहीं आया। धुनीलाल के मन में दूसरा ही प्रश्न उग आया। वह थोड़ा-बहुत निडर भी हो गया था, क्योंकि सम्बन्ध बढ़ने से जो सहजता आती है, उसी के अनुरूप उसका मन खुलने लगा था। इसलिए बिना किसी लाग-लपेट के धुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, अपने गाँव में हम देखते हैं कि साँप काटता है, तो कोई लहेरियासराय जाकर विष उतरवाता है, कोई झाड़-फूँक से उतरवाता है, और कोई विसहारा गहवर में जाकर ढोल-मृदंग बजाकर मनुखदेवा के वचन से विष झड़वाता है।"

धुनीलाल के मन में आगे कुछ और कहने की बात रह ही गई थी कि इसी बीच गोपालबाबू ने उसे रोकते हुए कहा-

"बौआ, दुनिया भी द्वन्द्व से भरी है और समाज भी। इसलिए अभी उन सब बातों को दृष्टि से हटाकर पिछले प्रश्न पर आओ कि जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए?"

जैसे मुनीलाल, वैसे ही धुनीलाल ने भी हिरण के बच्चे की तरह दोनों कान खड़े कर लिए। दोनों का ध्यान देखकर गोपालबाबू बोले-

"बौआ, पहले शीर्षक रूप में एक शब्द में सुन लो, बाद में समझने योग्य व्याख्या कर दूँगा।"

प्रश्न और उत्तर के बीच मुनीलाल और धुनीलाल के मन में रत्ती भर भी शंका नहीं रही। दोनों के मन ने मान लिया कि गुरुदेव जो कुछ कहेंगे, उसे गुण के रूप में अवश्य ग्रहण करेंगे।

गोपालबाबू बोले- “ज्ञान, दर्शन और चरित्र का सामंजस्य ऐसा होना चाहिए कि वे निरन्तर समन्वित होते चलें। इससे जीवन संकल्पित बनता है और अपने उद्देश्य को गढ़ने की शक्ति उसी में जाग उठती है। यही त्रयी जीवन के लिए अमूल्य रत्न है।”

जैसे अचानक चकाचौंध में आदमी की आँखें काम भी करती हैं और नहीं भी करतीं, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल के मन में चकभकी उठ गई।

यों, दोनों हाईस्कूल की नौवीं कक्षा में पढ़ते ही थे। दुनिया की कुछ-न-कुछ जानकारी उन्हें थी ही। मुनीलाल बोला-

“गुरुदेव, थोड़ा स्पष्ट करके कहिए।”

गोपालबाबू बोले-

“बौआ, मैं हाईस्कूल में शिक्षक के पद पर नौकरी करता हूँ। आठ घंटे ड्यूटी करने की कहाबद्धी है। चौबीस घंटों में जो बाकी सोलह घंटे बचते हैं, वह मेरी अपनी सम्पत्ति है। उसे मैंने अमूल्य बना लिया है। इसलिए जब मन हो, आकर समझ लिया करो।”

‘अमूल्य’ सुनकर जैसे मुनीलाल के कान नए सिरे से खड़े हुए, वैसे ही धुनीलाल के भी। दोनों की उत्सुकता देखकर गोपालबाबू बोले-

“बौआ, ज्ञान मेरा मस्तक है, दर्शन मेरा हृदय है और चरित्र मेरे हाथ-पैर हैं। शारीरिक रूप से इन तीनों का योग है और तीनों मिलकर समन्वित रूप में काम करते हैं। वैसे समाज के बीच तुम देखते ही हो कि बोलने में भी विषमता है। मतलब यह कि कुछ लोग झूठ नहीं बोलते, कुछ लोग आधा-अधूरा झूठ और सत्य दोनों बोलते हैं, और यही आधा-अधूरापन बीच में झमेला खड़ा किए हुए है।”

यों, गोपालबाबू के मन का पूरा विचार न मुनीलाल समझ रहा था और न धुनीलाल। लेकिन ‘झमेला खड़ा किए हुए है’ सुनकर मुनीलाल बोला- “क्या झमेला खड़ा किए हुए है?”

हँसते हुए गोपालबाबू बोले-

“वह आधा झूठ की ओर है या सत्य की ओर, इसे आज यहीं रहने दो। किसी और दिन कहूँगा। जब मन हो, तब आ जाना। बातचीत चलती रहेगी।”

मुनीलाल और धुनीलाल, दोनों ने गोपालबाबू को प्रणाम किया और विदा हो गए। ❑

अंधविश्वास

☰

गोपालबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल के बीच जो सम्बन्ध बन रहा है, वह एक नई भावभूमि का सृजन भी कर रहा है। अभी तक हम सब जानते हैं कि जैसे एक सीमा पर आकाश है और दूसरी सीमा पर धरती, वैसे ही दोनों के बीच स्नेहिल और प्रिय सम्बन्ध का एक स्थायी सेतु भी विद्यमान रहता है। अभी पाताल की चर्चा नहीं कर रहे हैं।

पूछा जा सकता है कि स्नेहिल सम्बन्ध क्या है? हाँ, यह प्रश्न स्वाभाविक है। दोनों के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध हैं। एक प्रकार का सम्बन्ध यह है कि जहाँ धरती है, वहाँ आकाश भी है। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि आकाश है, इसलिए धरती का अस्तित्व भी है।

जैसे एक ही शरीर में शरीर रूपी धरती है, वैसे ही आकाश रूपी मन, बुद्धि, विवेक और आत्मा भी हैं। खैर, अभी वह चर्चा नहीं। जिस धरती और आकाश को हम साधारण आँखों से देखते हैं, उसमें इतना तो स्पष्ट दिखता ही है कि धरती नीचे है और उसके ऊपर असीम विस्तार लिए आकाश फैला हुआ है।

दोनों के बीच, अर्थात धरती और आकाश के बीच, चाहे उसे पुल कहिए या भाव-जगत में बनते भाव-सम्बन्ध का रूप, वह एक नई भावभूमि का सृजन करता ही है। खैर, जो वह करता है, वह भावुक संसार की अपनी अनुभूति हुई। उससे गोपालबाबू या मुनीलाल-धुनीलाल को क्या मतलब?

जैसे सभी लोग आकाश के नीचे धरती पर खड़े हैं, वैसे ही वे तीनों भी उसी एक आकाश के नीचे धरती पर खड़े हैं। गोपालबाबू जिस हाईस्कूल

के शिक्षक हैं, उसी हाईस्कूल में मुनीलाल और धुनीलाल नौवीं कक्षा के छात्र हैं।

आकाश और धरती के बीच सम्बन्ध है भी और नहीं भी। इसे दूरी भी कहा जा सकता है। भले ही उसे एक ही प्रकृति की सृष्टि क्यों न कहा जाए, पर उस सृष्टि में भी सत्त्व, रज और तम अपनी-अपनी करामात करते ही हैं। इसी को त्रिगुणात्मक शक्ति कहा जाता है।

वैसे, ऐसा गुण उस शक्ति में भी है, जो राजा को रंक और रंक को राजा बना देती है, और बिगाड़ भी देती है।

वर्षा के समय जैसे धरती से लेकर आकाश तक सब एकरूप दिखाई पड़ता है, वैसे ही हवा और धूप के माध्यम से भी दोनों का सम्बन्ध बना रहता है। यों दोनों का सम्बन्ध जैसे साधक है, वैसे ही साध्य भी है। इसे द्वन्द्व कहेंगे या सम्बन्ध, यह विचारणीय प्रश्न तो है ही।

आज के वैज्ञानिक आधार पर इतना तो हम मानते ही हैं कि रंग-बिरंगी हवा के पुल पर आकाश धरती पर टिका हुआ प्रतीत होता है। वैसे धरती का भी कोई निश्चित ठौर-ठिकाना नहीं है। भूगोलवेत्ता आरम्भ से कहते आए हैं कि धरती गोल है, इसलिए सब कुछ गोल है।

तब आकाश कैसा है? आकाश को शून्य मानकर सुनसान समझ लीजिए। सूर्य भी गोल, तारे-नक्षत्र भी गोल और चाँद तो गोल है ही। ऐसा भी हो सकता है कि हमारी आँखें ही गोल हों, इसलिए सब कुछ गोल-गोल दिखाई पड़ता हो।

जैसे आकाश और धरती के बीच हवा की गतिविधि है, वैसे ही धूप, अर्थात सूर्य के प्रकाश की भी है। हम देखते भी हैं और मानते भी हैं कि चौबीस घंटे में बारह घंटे का दिन होता है और बारह घंटे की रात। यहाँ यह न समझिए कि उन बारह घंटों में भी कोई निश्चित समानता रहती है। यह तो सामने ही है कि माघ का दिन दुबला होकर चूजे-सा सिमट जाता है, जबकि बैसाख-जेठ का दिन अग्निमय खलीफा की तरह फैल उठता है। यह भी हम देखते हैं और मानते भी हैं।

वैसे रात और दिन के बँटवारे में भी एक प्रकार की बेईमानी है। जैसे समुद्र-मंथन के बाद देवताओं ने अमृत के बँटवारे में की थी, वैसे ही रात-दिन के हिस्से में भी दिखाई पड़ती है। ऐसे स्थान भी हैं जहाँ सूर्य का प्रकाश आज तक नहीं पहुँचा। इतने दिनों का अर्थ, जब से सूर्य है तब से। इसलिए लगता है कि सूर्य को भी दुनिया को पूरी तरह देखने की लालसा अब तक बनी हुई है।

वैसे आप यह भी कह सकते हैं कि सूर्य से ही तो धरती बनी है। खैर, जो जहाँ है, वहीं रहे। सूर्य यदि अपना प्रकाश नब्बे डिग्री अक्षांश तक रखना चाहे, तो रखे। वह उसकी अपनी व्यवस्था है।

दुनिया जैसे समता से भरी है, वैसे ही विषमता से भी भरी है। इसी समता और विषमता के बीच गोपालबाबू हैं और मुनीलाल-धुनीलाल भी। जैसे हम सुनते भी हैं और कहते भी हैं-

"कुमुदनी जल में बसै, चन्दा बसे अकास।

जो जाही के भावना, सो ताही के पास।"

ऐसी बात केवल चाँद और कुमुदनी तक ही सीमित नहीं है, गोपालबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल के बीच भी वही भाव बन रहा है।

प्रियता और अप्रियता जैसे मन को निरन्तर कुरेदती रहती हैं, वैसे ही गोपालबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल के बीच भी था। यहाँ धुनीलाल का अर्थ कबीर नहीं समझना चाहिए, क्योंकि वे भी धुनिया वंश के थे। खैर, अभी वंश और वंशलोचन की बात नहीं करेंगे। अभी तो मुनीलाल, धुनीलाल और गोपालबाबू की ही चर्चा है।

गोपालबाबू हाईस्कूल के शिक्षक हैं और मुनीलाल-धुनीलाल शिष्य कहिए, शिक्षार्थी कहिए या छात्र-विद्यार्थी, वही हैं।

बिछावन पर पड़े-पड़े गोपालबाबू के मन में उठा कि आज यदि मुनीलाल-धुनीलाल आएँगे, तो पहले अपनी औकात का परिचय देना आवश्यक है। क्योंकि लोग आखिर लोग ही होते हैं। यदि कोई मीठा विचार

बाँटता है, तो हिस्सा लेने वाले के मन में स्वाभाविक रूप से यह उठता ही है कि बाँटने वाले के पास मिठास का असीम भंडार है, जो कुबेर के खजाने की तरह कभी समाप्त नहीं होगा। चाहे लाखों वर्षों से चला आता मनुष्य-जीवन आज भी अभावग्रस्त ही क्यों न हो, चाहे अन्न-वस्त्र के लिए ही लालायित क्यों न रहता हो। बिछावन पर लेटे-लेटे ही गोपालबाबू मन-ही-मन संकल्पित हो गए।

उधर बाल-बोध से भरे मुनीलाल और धुनीलाल रमचेलबा जैसे थे ही, ऊपर से परिवार के भार से पूरी तरह मुक्त भी थे। भोर होते ही उन्होंने सोचा कि जैसे कुछ लोग दिन भर उपवास-पावन करते हैं, वैसे ही हम भी करेंगे। गोपालबाबू के यहाँ से लौटकर किताब का झोला लेंगे और स्कूल चले जाएँगे, खाने-पीने में समय नहीं लगाएँगे।

यही सोचकर दोनों गोपालबाबू के यहाँ पहुँचे।

गोपालबाबू अपने मन की बात कहने का विचार पहले ही तय कर चुके थे, इसलिए उनका मन हलचल और कलकल से भरा हुआ था। यहाँ यह समझना चाहिए कि समाज में सभी अपने को ईमानदार मानते हैं, लेकिन अपनी कमाई और आमदनी बताने के मामले में अक्सर झूठ बोल ही देते हैं। यह स्वाभाविक भी है। उजाले में चोर भी चोरी करने से बचता है कि लोग पहचान लेंगे। मतलब, चोर भी किसी सीमा तक साधु ही है। तब समाज तो समाज ही हुआ।

मुनीलाल और धुनीलाल को देखकर गोपालबाबू को लगा कि क्यों न अपने आश्रम को ब्रह्मचारी-आश्रम जैसा बना दूँ। यहाँ एक भ्रम है कि ब्रह्मचारी की परिभाषा में छहों रस घुले हुए हैं। खैर, जो है सो है। नियम भी तो नियम है।

मुनीलाल और धुनीलाल ने अपने नियम के अनुसार दो डग की दूरी से दोनों हाथ जोड़कर कहा-

“प्रणाम गुरुदेव।”

हुलसते हुए गोपालबाबू बोले- “बौआ, समय पर आवश्यकता की

पूर्ति हो जाने से जैसे मन तृप्त होता है, वैसे ही आज मेरा मन तृप्त है।"

गोपालबाबू का तृप्त मन देखकर मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, आज आप दाहिने हैं, इसलिए हम दोनों को भी...?"

इसी बीच गोपालबाबू की पत्नी जलपान लेकर पहुँच गईं। पत्नी के हाथ में जलपान देखकर गोपालबाबू बोले-

"भूखे भजन न होई गोपाला। पहले सब लोग जलपान कर लो। उसके बाद दो घंटे तक बातचीत होती रहेगी। फिर स्कूल जाने की तैयारी मैं भी करूँगा और तुम लोग भी करोगे।"

जलपान करने के बाद, चाय पीते हुए गोपालबाबू सवाल-जवाब के लिए तैयार हुए और बोले-

"बौआ, तुम्हारा प्रश्न 'अंधविश्वास क्या है', उसका उत्तर बाद में दूँगा। पहले अपना विचार कह देता हूँ।"

गोपालबाबू के विचार की लावण्यता ने जैसे दोनों को, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल को, मोह लिया। वातावरण पूरी तरह शांत हो गया। चुप्पी देखकर धुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, आप जाने क्या बोलने लगे थे और बीच में चुप क्यों हो गए?"

गोपालबाबू बोले-

"इसे चुप्पी मत समझो। जो कहना चाहता हूँ, उसका मुँह और पूँछ मन-ही-मन मिला रहा हूँ। तुम लोग जो भी हो, दोनों बाल-बोध ही तो हो।"

मुनीलाल का मन कुछ कम, पर धुनीलाल का मन पूरी तरह पके केले की तरह पिघल गया। सिर हिलाते हुए धुनीलाल बोला-

"इसमें कोई चोरी-छिपी थोड़े ही छिपी है।"

गोपालबाबू बोले- "बौआ, जैसे विद्यालय में, वैसे ही गाँव-समाज में भी अधिकांश लोग कहते हैं कि सभी झंझटों की जड़ गोपालबाबू ही हैं। लेकिन उसकी परवाह कहाँ है? मेरे कर्म के साथ विचार का प्रवाह भी है। तुम लोग भी समझ लो कि जैसे पिताजी ने अपनी कमाई पर अपना जीवन

खड़ा किया था, वैसे ही मैं भी हूँ। केवल आठ घंटे की ड्यूटी की आमदनी, यानी वेतन है। उसी पर अपना जीवन खड़ा किया है, इसलिए किसी की परवाह नहीं है। दूसरों की तरह ऐसा नहीं कि स्कूल में वेतन भी लूँ और घर पर पढ़ाकर अलग से कमाई भी करूँ। दूसरे लोग क्या कहते हैं, क्या करते हैं या नहीं करते, पर किसी के कहने से अपना रास्ता थोड़े ही तोड़ दूँगा। इसलिए जैसे विद्यालय में सभी मुझे झंझटिया समझते हैं, वैसे ही मैं भी देखता हूँ कि जिनका चाल-चलन चौपट है, धर्म की पताका उन्हीं सबके हाथ में फहरा रही है।"

अचानक गोपालबाबू के मन की भड़ास निकल गई, जिससे उनका मन हल्का हो गया। खिलते हुए फूल की कली की तरह गोपालबाबू का मन खिल उठा। इससे उनके मुँह पर मधुरता आ गई। गोपालबाबू को इस तरह खिलते देखकर धुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, समय आगे घिसकता जा रहा है और सवाल पीछे छूटता जा रहा है।"

पूरी तरह संतुष्ट होकर गोपालबाबू बोले- "बौआ, तुम लोगों की पिछली उधारी चुकाने से पहले मैं भी एक उधारी माँगता हूँ।"

नकद-उधार को जैसे मुनीलाल नहीं समझा, वैसे ही धुनीलाल भी नहीं समझा। इसलिए दोनों जिज्ञासु की तरह एक साथ बोल पड़े- "वह क्या, गुरुदेव?"

गोपालबाबू बोले- "बौआ, 'पेट-पूजा क्या है?' यह प्रश्न तुम दोनों के लिए उधारी हुआ। इसका उत्तर उधार रहा। अभी पिछले प्रश्न का उत्तर देता हूँ।"

यों मुनीलाल और धुनीलाल अपना सवाल भूल गए थे, लेकिन बोलने के क्रम में जब गोपालबाबू ने उसका संकेत किया, तब दोनों को याद आ गया।

इसी बीच अपनी बात कहने से पहले गोपालबाबू ने दोनों पर, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल पर, दृष्टि दौड़ाई, तो उन्हें लगा कि दोनों उतावले तो

नहीं, पर उत्सुक अवश्य हैं। गोपालबाबू बोले-

"बौआ, अंधविश्वास एक ही तरह का नहीं होता। स्तर के हिसाब से भी और समय के हिसाब से भी उसके कई रंग होते हैं। इसलिए इसे बरसाती बीमारी की तरह नहीं, जन्मजात बीमारी की तरह समझना चाहिए। जैसे देवताओं में भी जन्मे और अजन्मे, दोनों माने जाते हैं, वैसे ही।"

मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, जन्मा क्या हुआ और अजन्मा क्या हुआ?"

गोपालबाबू बोले-

"जन्मजात का अर्थ हुआ सदाबहार रोग, और बरसाती का अर्थ हुआ मौसमी, जिसे तुम समयिया बीमारी कहते हो।"

चुप्पी देखकर गोपालबाबू बोले-

"रोग एक रहते हुए भी हमारे यहाँ उसके इलाज की अनेक पद्धतियों का चलन रहा है। एक श्लोक है:

'वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारा:

ज्योतिर्विदो ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।

भूताभिषंग इति भूतविदो वदन्ति,

प्राचीनकर्म बदलवद् मुनयो वदन्ति।'

वैद्य कहते हैं कि आपके रोग का कारण शरीर के कफ, पित्त और विकृत वात की गड़बड़ी है। ज्योतिषी कहते हैं, 'आपके ग्रहों की गति विपरीत हो गई है।' भूतवादी कहते हैं, 'आपके ऊपर भूत की छाया पड़ गई है।' और मुनिजन कहते हैं, 'यह अपने किए का फल है।' इसी के बीच विश्वास और अंधविश्वास, दोनों हैं, जो झंझट की जड़ हैं।" ❑

विवादप्रिय लोग

☰

विद्यालय में कल छुट्टी रहेगी, इसलिए जैसे शिक्षकों को, वैसे ही छात्र-छात्राओं को भी अपने काम की स्वतंत्रता रहेगी। इससे भर मन बातचीत करने का अवसर भी मिल ही जाएगा। आप पूछेंगे कि भर मन बातचीत क्या हुई? लोगों के बीच भर मन बातचीत करने का अर्थ है, मन की सारी बात कहते हुए मन को पूरी तरह खाली कर लेना। यही हुआ भर मन बातचीत करना।

स्कूल की सीमा से आगे बढ़ते ही पीछे से धुनीलाल ने मुनीलाल से कहा-

"मुनीलाल भाई, जरा चाल धीमी कर दीजिए, मैं भी दौड़ता हुआ आ रहा हूँ।"

मुनीलाल ने मन-ही-मन सोचा कि थोड़ा-सा रुक जाने से धुनीलाल की दौड़ने की परेशानी तो मिट ही जाएगी। इसलिए उचित होगा कि पाँच-दस सेकण्ड रुक जाए।

मुनीलाल को खड़ा होते देखकर धुनीलाल ने दौड़ना छोड़ दिया। वह खड़ा होकर पहले चार-पाँच बार लंबी साँस लेने और छोड़ने लगा। इससे उसकी साँस की गति स्थिर होने लगी। उसने मन-ही-मन सोचा कि जितनी देर में मुनीलाल भाई के पास पहुँचूँगा, उतनी देर में अपनी थकान की साँस को भी स्थिर कर लूँगा। उसने वही किया।

धुनीलाल के पास आते ही मुनीलाल ने पूछा- "धुनी भाई, आपको

इतनी देर क्यों हुई?"

अब तक मुनीलाल सीधे धुनीलाल ही कहता था, पर जिस दिन से दोनों गोपालबाबू के सम्पर्क में आए, उसी दिन से जीवन की गतिविधि सुधरने के कारण विचार में भी सुधार हुआ। इसलिए दोनों एक-दूसरे के लिए भाई-भैयारी के शब्दों का प्रयोग करने लगे। अपने गाँव-समाज में ऐसा बना हुआ है कि जैसे हम अपने पिता के भाई को काका, चाचा कहते हैं, वैसे ही गाँव-समाज के दूसरे परिवारजनों को भी काका, चाचा कहते ही हैं। यही समन्वयवाद की विचारधारा का सूत्र है, समतामूलक समाज की नींव की एक ईंट। इसी विचारधारा के भीतर भाई-भैयारी का सम्बन्ध भी है।

धुनीलाल बोला-

"मुनी भाई, कल की छुट्टी की सूचना सुनते ही मन में हुआ कि गोपाल चाचा से भेंट कर लूँ। इसलिए जब ऑफिस, यानी स्टाफ रूम, के मुँह के पास पहुँचा, तो देखा कि गोपाल चाचा बहुत तेज-तेज बोल रहे थे। वैसे, उनके बीच के, यानी शिक्षकों के बीच के विवाद में बाल-बोध छात्र-छात्राओं को नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए तुरंत लौट गया। इसी कारण पीछे रह गया।"

बातचीत का मुँह मिलाते हुए दोनों आगे बढ़े। चार कदम आगे बढ़ने के बाद मुनीलाल बोला-

"धुनी भाई, अभी घर चलो। दोपहर का खाना खाकर हम दोनों भाई गोपाल चाचा के यहाँ चलेंगे और समझेंगे कि स्कूल के स्टाफ के बीच चाचा इतने गरम क्यों हो रहे थे। इससे इतना तो होगा ही कि एक ओर शिक्षकों के बीच कुछ बोलना नहीं पड़ेगा, जिससे उनके मन को चोट लगती, और दूसरी ओर अपनत्व की जिज्ञासा भी पूरी हो जाएगी।"

गोपालबाबू भी अपने विचार पर दृढ़ होकर ऑफिस, यानी स्टाफ रूम, से निकले और डेरे की ओर बढ़े। यों, जैसे जलावन हट जाने पर आग शांत होने लगती है, वैसे ही गोपालबाबू के विचार की आग भी घटते-घटते शांत हो गई थी। लेकिन उस शांति में भी राख के भीतर छिपी आग की तरह इतनी ऊष्मा बनी हुई थी कि वे अपने विचार को अपने तक ही नहीं रखेंगे,

बच्चे से लेकर सयाने तक को भी अवश्य बता देंगे। उसके लिए जानने वाले और बताने वाले की आवश्यकता तो होती ही है। अच्छा है कि दो रमचेलबा, यानी मुनीलाल और धुनीलाल, मिल गए हैं। उनसे इतनी सहायता तो मिल ही जाएगी। समय का प्रभाव जैसे जीवन पर पड़ता है, वैसे ही मन के विचार पर भी पड़ता है।

शाम के छह बजे का समय था। दिन समाप्त हो रहा था और रात का आगमन भी। उसी बीच सूर्य भी अपनी लटकती हुई शक्ति को समेट रहा था। गोपालबाबू दरवाजे के सामने कुर्सी पर बैठे चिंता में पड़े थे कि कैसे एक साधक महात्मा को भुलाया और उपेक्षित किया जा रहा है।

उनकी आँखों के सामने अब भी वही बात अटकी हुई थी कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रैदास महात्मा की चर्चा निर्गुण संत के रूप में विस्तार से तो नहीं, पर अपनी क्षमता के अनुसार ईमानदारी से की है।

उसी समय मुनीलाल और धुनीलाल आकर गोपालबाबू के सामने खड़े हो गए। दोनों को दो कुर्सियों पर बैठाते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ, जैसे गुप्तजी, मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में लिखा है, 'आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।' उसी तरह अब तुम लोगों की बारी आई है।"

यों, गोपालबाबू के विचार को दोनों में से कोई भी पूरी तरह नहीं समझ सका, पर यह भी नहीं कि खण्डकाव्य की तरह कुछ समझे ही नहीं। इतना तो वे समझ ही गए कि शायद किसी काम में गुरुदेव को हम लोगों की भी आवश्यकता है। दोनों, अर्थात मुनीलाल और धुनीलाल, एक स्वर में बोले-

"तैयार हैं।"

यों, दोनों ने सोच-विचारकर एक मत नहीं बनाया था, पर जैसे विषुवत रेखा, जो दुनिया की मध्य रेखा है, शून्य डिग्री अक्षांश पर स्थित है, और वहाँ से उत्तर तथा दक्षिण में समान दूरी पर एक-सा मौसम होता है और

एक जैसी उपज भी होती है, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल की भावभूमि में भी हो गया था। इसी कारण उनका स्वर एक साथ निकला।

आज की अपनी उलझन मुनीलाल और धुनीलाल को सुनाते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ, अपनी धरती से साधकों को भुलाया और उपेक्षित किया जा रहा है।"

नौवीं कक्षा के मुनीलाल और धुनीलाल कैसे समझते कि साधक कौन हुए और भुलाया-उपेक्षित किया जाना क्या हुआ? गीत-भजन के ध्रुपद की तरह दोनों एक साथ बोले-

"गुरुदेव, जब कबीर बाबा ने भी कहा है कि 'शीश दियो जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान', तब आप जो आदेश देंगे, उसे हम अपनी शक्ति भर पूरा करने के लिए तैयार हैं।"

मुनीलाल और धुनीलाल का विचार सुनकर गोपालबाबू को ऐसा लगा, जैसे उनके विचार को घी का खोया हुआ घड़ा मिल गया हो। उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया कि जो हुआ सो हुआ। जो इतना भी नहीं समझता कि किसी को तब तक पूरी तरह भुलाया या उपेक्षित नहीं किया जा सकता, जब तक दुनिया का एक भी प्राणी साथी बनकर उसका साथ निभाता रहता है।

अपने विचार को शांति के जल से सींचते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ, कल रैदास जयंती के अवसर पर मैं आमंत्रित हूँ। उसमें तुम लोग भी चलना। जितना बन पड़े, उतना बोलकर श्रद्धांजलि दे देना।"

एक तो नया काम, उस पर नई उम्र के लोग, जिन्होंने कभी ऐसा देखा-सुना भी नहीं था। वहाँ सार्वजनिक मंच पर मुँह उठाना बाल-बोध के विचार से बाहर की बात थी।

मुनीलाल ने धुनीलाल की ओर देखकर आँख के इशारे से उसे टहोका। लेकिन धुनीलाल का मन अपनी ही धुनकी पर चढ़ी रूई की तरह

उलझन में फँसा हुआ था, इसलिए उसकी बोली बंद हो गई थी।

दोनों को अवाक् देखकर गोपालबाबू समझ गए कि दोनों अपने को पूरी तरह अनाड़ी समझ रहे हैं। अनाड़ी को नाड़ी बनाना ही तो कलाकारी है। मुस्कराते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ, रैदास कौन थे और कैसे थे, मूल प्रश्न यही है। इसलिए ध्यान से सुनो।"

जैसे कीर्तन-मंडली में कीर्तनिया और नटुआ-मंडली में नचनिया तैयार होकर मंच पर जाने के लिए बेचैन रहता है, वैसे ही मुनीलाल और धुनीलाल को भी सिखाना है। विचार के दौर में सिखाई गई बात व्यवहार के दौर में अनुचित भी हो सकती है। पर कुछ भी हो, यह भी तो सत्य है कि जैसे मुनीलाल नौवीं कक्षा का छात्र है, वैसे ही धुनीलाल भी। इसलिए बाल-बोध के रूप में वे क्षमा के योग्य तो हैं ही।

नकारात्मक विचार को सकारात्मक रास्ते पर लाते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ, रैदास चमार जाति के थे और काशी में अपना चमारी जीवन, यानी जूता सीने का काम, अपनी जीविका बनाए हुए थे।"

मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, मैं मामा गाँव गया था। रात में खाने-पीने के बाद जब सोने के लिए बिछावन पर गया, तब मामा ने शीत-बसंत की कथा कहना शुरू किया। दूसरे दिनों की तरह बिछावन पर पड़ते ही जो नींद तुरंत आ जाती थी, वह मामा की कथा की धुन में कहाँ भाग गई, इसका कोई ठिकाना ही नहीं रहा। दूसरे सुनने वालों की तरह मैं भी हूँकारी भरने लगा। जब आधी रात बीत गई, यानी रात के बारह बजे के बाद, तब छुट्टी देते हुए मामा बोले कि अब सोने जाओ, जो आगे है वह अगले दिन कहेंगे। वह कथा मुझे आज भी वैसे ही याद है जैसे सुनी थी। उसी तरह रैदास दादा के विषय में कथा की तरह बताएँगे, तो जीवन भर याद रहेगा।"

मुनीलाल के विचार को अच्छी तरह धुनकर गोपालबाबू बोले-

"बौआ सभ, अभी तक जो हुआ, वह स्कूल की भैयारी में, यानी शिक्षक-जगत में हुआ। बखेरिया लोग कहकर मुँह-मिलानी कर ली गई। यह एक सीमा हुई।"

'बखेरिया' शब्द कान में पड़ते ही मुनीलाल और धुनीलाल के कान चुलबुलाने लगे, क्योंकि उन्होंने कभी 'बखेरिया' शब्द सुना नहीं था। लेकिन मन में इतनी आशा तो भरी ही थी कि गुरुदेव गोपाल चाचा हैं। मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, बखेरिया क्या हुआ?"

यों, बोलते समय गोपालबाबू के अपने मन ने भी मना किया था कि वे अपरिचित शब्द बोल रहे हैं। लेकिन तुरंत ही उनका मन उत्साहित होकर कहने लगा कि जब तक अपरिचित परिचित नहीं बनेगा, तब तक वह दुनिया को देख और समझ कैसे सकेगा।

गोपालबाबू बोले-

"बौआ, जैसे कल का कार्यक्रम है, वैसे हमें पहले उसी कार्यक्रम में जुट जाना है। लेकिन इस बीच जो मुद्दा उठ गया है, उसे भी एक नज़र देख लेना अच्छा होगा।"

धुनीलाल बोला-

"हाँ, वह तो होगा ही।"

दोनों की सहमति का समर्थन, या समर्थन की सहमति पाकर गोपालबाबू बोले-

"कर्म की दौड़ में आगे बढ़ो। बखेरिया लोग का अर्थ हुआ, जो अपने हिस्से के लिए बखेड़े की सीमा पर खड़े होकर बखेड़ा करते हैं। वही बखेरिया की सीमा हुई और उस सीमा पर खड़े लोग बखेरिया लोग हुए।"

जैसे आईने में आदमी अपना मुँह-कान स्वयं देखता है, जो साथ रहते हुए भी खोया हुआ-सा रहता है, वैसे ही दोनों को, यानी मुनीलाल और

धुनीलाल को लगा। धुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, कल का कार्यक्रम सिर पर चढ़ा हुआ है, इसलिए आँख मूँदकर अभी से उसी में लग जाना है।"

जब कोई खोया हुआ रास्ता परिचित जगह पर पहुँच जाता है, तब मन में जो खुशी होती है, वही खुशी धुनीलाल का विचार देखकर गोपालबाबू के मन में हुई। वे बोले-

"दोनों कान खोलकर सुनो। भक्त रैदास बहुत बड़े संत थे। जाति से चमार थे। वे उच्च कोटि के साधक थे। साधक क्या होता है, यह अभी नहीं। अभी बस इतना समझो कि रैदास बहुत बड़े आत्मज्ञानी थे। वे काशी में रहते थे और चौबीसों घंटे अपने भीतर लगे रहते थे।

जैसे अपने खेत-पथार की रखवाली करने वाले रखवार की छोटी-सी खोपड़ी होती है, वैसा ही उनका छोटा-सा घर था, जिसमें वे रहते थे। पत्नी के साथ उनका केवल दो जनों का परिवार था। वहीं वे जूते का काम करते थे। उससे जो कमाई होती थी, उसी से परिवार चलता था। जब काम से निवृत्त होते, यानी जिस काम का जितना समय था, उसके बाद वे अपनी साधना में लग जाते थे।"

एक दिन एक साधु रैदास से मिलने आए। तब तक रैदास के तत्त्वज्ञान की प्रसिद्धि फैल चुकी थी। रैदास की आर्थिक स्थिति देखकर वे चिंता में पड़ गए और सोचने लगे कि ऐसी गरीबी में भी आत्मचिंतक पैदा होते हैं!

वे संत, जो मिलने आए थे, रैदास से बोले-

"मैं आपको पारस मणि देता हूँ। उससे आपका जीवन सुधर जाएगा।"

रैदास ने कहा-

"भाई, मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ भरा-पूरा है। जिसे असंतोष है, उसे पारस मणि की आवश्यकता है। जिसे संतोष है, उसके लिए पारस भी पत्थर ही है।"

लंबी साँस छोड़ते हुए मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, सब स्पष्ट हो गया। कल जो कार्यक्रम है, उसके लिए अब किसी तरह की तैयारी की आवश्यकता नहीं है। हम जैसे हैं, वैसे ही कल समय से पहले कार्यक्रम में भाग लेने के लिए उपस्थित हो जाएँगे।"

मुनीलाल की बात सुनकर गोपालबाबू मन-ही-मन आँकने लगे कि ठीक ही कहा गया है-

"बिनु भय होई न प्रीति।" ❑

नव जीवन

☰

महादेवपुर गाँव के कार्यक्रम से, अर्थात महादेवपुर में रैदास जयंती होने से, इलाके में अनेक प्रकार का नव जीवन उठ खड़ा हुआ। गाँव भी खड़ा हुआ, गाँव का समाज भी खड़ा हुआ और गोपालबाबू के साथ मुनीलाल और धुनीलाल का जीवन भी उठ खड़ा हुआ।

गाँव इस तरह खड़ा हुआ कि आज तक वहाँ कभी किसी महापुरुष, आत्मज्ञानी या तत्त्ववेत्ता की जयंती नहीं हुई थी। उसके आयोजन से गाँव को नव जीवन मिला। ऊपर से कार्यक्रम के संयोजक ने मंच से ही घोषणा कर दी कि जब तक शरीर में शक्ति रहेगी और कार्यक्रम कर सकूँगा, तब तक यह समारोह करता रहूँगा।

देखा-देखी से लोगों में उत्साह का संचार होता ही है। एक-दो गाँव के लोग, अर्थात जितने लोग कार्यक्रम में आए थे, वे सभी अपने-अपने बैठने के स्थान से उठ-उठकर बोले-

"जब तक जीवित रहेंगे, तब तक इसी तरह रैदास बाबा के जन्मदिन की शुभकामना देते रहेंगे।"

समाज के लोगों में एक नव जीवन का संचार हुआ।

भाषणकर्ताओं में मुख्य वक्ता गोपालबाबू ही थे, इसलिए तीसरे पहर में, यानी कार्यक्रम के तीसरे चरण में, उन्हें समय मिला। गोपालबाबू ऐसे वक्ता नहीं थे कि वक्तव्य कागज पर लिखकर ले जाएँ और मंच पर पढ़कर सुना दें। वे ऐसे वक्ता थे, जो अपनी दिनचर्या के अनुकूल कार्यक्रम तैयार

करते थे और जो तैयार करते थे, वही लोगों के बीच बोलते थे। इसलिए कार्यक्रम से पहले न तो वे भाषण लिखते थे और न भाषण के बाद उसे याद रखते थे। दूसरों की तरह भाषण के बाद यह नहीं कहते थे कि सारी बात तो बोल गया, पर असली बात छूट गई।

कार्यक्रम के तीसरे दिन सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया था। दरवाजे के ओसारे की चौकी पर गोपालबाबू चाय की आशा में बैठे थे। पत्नी ने आँगन से झाँककर देख लिया था कि हाथ-पैर धोकर, मुँह-आँख और नाक-कान को जल से सींचकर वे आ बैठे हैं। पति को बैठा देखते ही सुशीला चाय बनाने लगीं।

सुशीला ने अपने विचार में यह सुधार ला लिया था कि पुरुष के सामने बैठकर चाय पीना या कोई चीज खाना, जो अब तक समाज में वर्जित माना जाता था, उस वर्जना की सीमा को उन्होंने सुधारकर समानता में बदल लिया था। इसलिए एक हाथ में गोपालबाबू के लिए और दूसरे हाथ में अपने लिए चाय का गिलास लेकर वे दरवाजे पर आईं। पति के हाथ में गिलास पकड़ाते हुए अपना गिलास बाएँ हाथ से दाएँ हाथ में लिया और चौकी पर बैठ गईं।

यों, दिन में कई लोगों के मुँह से सुशीला सुन चुकी थीं कि “गोपालबाबू ने गाँव की जय-जय कर दी।” उसका उन-मुनी भाव सुशीला को भी था। इसलिए वे पति के सामने निडर होकर बैठीं और चाय पीने के साथ बातचीत करने का मन भी बना चुकी थीं।

हाथ-पैर धोने के बाद दरवाजे पर आकर गोपालबाबू चौकी पर ठीक से बैठे भी नहीं थे कि तभी उनके मन में परसों का वक्तव्य आ गया। वक्तव्य की समीक्षा करते हुए उनका ध्यान कुछ शब्दों पर गया। वे मन-ही-मन अफसोस करने लगे कि जिस गाँव-समाज के बीच कार्यक्रम हुआ, उसके अनुकूल न होने वाले कुछ शब्द बोल गया, जिनकी व्याख्या मुझे कर देनी चाहिए थी, पर वह नहीं कर सका।

अपने समाज में शब्दों का भ्रम इतना जबरदस्त है कि धर्म जैसा अकाट्य सत्य रहते हुए भी वह शब्दों के जाल में इस तरह उलझ गया है कि

उसका वास्तविक रूप कुछ नहीं, केवल शब्द-रूप बनकर खड़ा रह गया है। धरती पर सात अरब लोग हैं। सबका अपना-अपना धर्म है और कर्म भी। इसी से धर्म की सात अरब व्याख्याएँ भी हैं।

हम देखते ही हैं कि एक ही महावीरजी को चोर भी चोरी करते समय कबूलता है कि यदि सफल हुआ तो मिठाई चढ़ाऊँगा, और सिपाही भी कबूलता है कि यदि मेरे क्षेत्र में चोरी-चपाटी नहीं होगी, तो मिठाई चढ़ाऊँगा। यही खेल दुनिया के लोगों ने भी फैला रखा है और प्रकृति ने भी। एक ही वस्तु अमृत भी है और मृत्यु भी।

भाषण के बीच रैदास के जीवन के सम्बन्ध में गोपालबाबू के मुँह से जो अपरिचित शब्द निकल गए थे, जैसे साधक, तत्त्वज्ञानी, आत्मचिंतक, पारस मणि आदि, उन्हें वे मन-ही-मन स्वयं ही खोलकर समझ रहे थे। कुछ भी हो, कितना भी झगड़ा-झंझट हो या स्नेह-प्रेम, पति-पत्नी के बीच ऐसा वैचारिक आकर्षण तो होता ही है कि दोनों एक-दूसरे के जीवन को अपना जीवन समझते हैं।

दो घूँट चाय पीने के बाद सुशीला के मन में जैसे उड़ी-बीड़ी जागने लगी। कई लोगों के मुँह से वे अपने पति की जय-जयकार सुन चुकी थीं। सुशीला बोलीं-

"महादेवपुर गाँव में क्या-क्या हुआ?"

पत्नी का विचार सुनकर गोपालबाबू मन-ही-मन सोचने लगे कि बिना किसी कारण टिटही थोड़े ही बोलती है। कोई कारण अवश्य है। विचार को पलटते हुए गोपालबाबू बोले-

"आपको किसने क्या कहा- पहले वह कहिए। तभी तो जो कुछ हुआ, उससे उसका मिलान करूँगा।"

सुशीला के मन में प्रेम का एक नया दृश्य सामने खड़ा हो गया था। वह यह था कि कुछ भी हो, पर अर्द्धांगिनी तो मैं ही हूँ। आज यदि कोई फल पति को मिले या मुझे मिले, तो दोनों का आधा-आधा हिस्सा हुआ ही न। पति के नाम से यदि समाज में जय-जयकार होती है, तो वह मेरी भी हुई न।

यही खुशी सुशीला के मन में नाच रही थी।

चाय पीने के बाद गोपालबाबू मन-ही-मन अपने को देख रहे थे। अपने को देखना सत्य को देखना ही है। समाज और परिवार के लोग दूसरे को अधिक देखते हैं और अपने को देख ही नहीं पाते कि अपनी गतिविधि क्या है। खैर, जो है, जहाँ है, वहीं रहे। उससे गोपालबाबू को क्या मतलब? मतलब इस बात से है कि शरीर पाकर, जो शरीर दुनिया में सबसे मूल्यवान है और जिस पर दुनिया का खेल चलता है, अपनी जिंदगी कैसी है?

अचानक गोपालबाबू के मन में एक भ्रम जागा। वह यह कि अब तक उनका अपना जीवन भ्रमित था। अर्थात जिस शिक्षक-वृन्द के बीच वे अपने को सहयोगी भी समझते थे और सहयोग पाने वाला भी, वह भ्रम था। उसका सीधा परिचय रैदास जयंती समारोह में हो ही गया। मैं मनुष्य हूँ। दुनिया में जितने मनुष्य हैं, सबके साथ मेरा बराबरी का सम्बन्ध है। उसके बीच यदि कहीं कोई खोंट-खाँट है, तो उसमें अपने को यही देखना चाहिए कि अपने गुण क्या हैं और दोष क्या हैं। दुनिया क्या करती है, सात अरब लोगों में उसकी थाह कहाँ मिलेगी? पर अपने विषय में समझना-जानना, यह थाह तो है ही।

अपने विचार ने गोपालबाबू को जैसे संतुलित बना दिया। संतुलित होते हुए उन्होंने पत्नी की ओर मुँह उठाकर कहा-

“समाज के लोगों के मुँह से गाली-गलौज तो नहीं सुनी होगी। समाज दो-मुँहा है। कभी अच्छे काम को देखकर हँसता है, तो कभी बुरे काम को देखकर भी हँसता ही है। साथ ही, जो बुरे काम पर हँसता है, वह अच्छे काम पर भी हँसता ही है।”

शुभ समय में जैसे परिवार में कोई बाल-बोध बच्चा ऊट-पटांग शब्द का प्रयोग कर दे, तो परिवार के लोग खीज उठते हैं, वैसे ही खीजती हुई सुशीला बोलीं-

“बुरा होगा दूसरों के घर में, हमारे घर में क्यों होगा?”

यों, बोलते समय सुशीला खीजकर बोली थीं, पर उनके हृदय का मन

खुशी से लहलहा रहा था, इसलिए बोलकर मुस्करा दीं।

यों, गोपालबाबू अपने समाज के बीच यह भी आँक रहे थे कि रैदास जयंती का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है। रैदास केवल युगपुरुष ही नहीं, जीवनपुरुष भी थे। लाखों-करोड़ों जीवनों के बीच उनका भी एक जीवन था, जो साधारण जीवन नहीं, देवतुल्य साधक जीवन था।

आप कहेंगे कि आजकल के लोग अधिक चालबाज़ हो गए हैं; पर उस समय, यानी रैदास के समय में, आज से लगभग छह सौ वर्ष पहले, चालबाज़ी नहीं थी, ऐसी बात भी नहीं है। फूस का घर हो, मिट्टी की दीवार वाला घर हो या कोठा ही क्यों न हो, जेठ की पछिया हवा और हथिया नक्षत्र का झटका सबको लगता है। भले उसमें कुछ गिर-पड़ जाए, जिसे झटके के बाद फिर बनाया भी जा सकता है। पर जीवन को रहने के लिए घर तो चाहिए। जीवन में यदि जानना ही नहीं रहेगा, तब अजान होना स्वाभाविक ही है।

संयोग हुआ कि दोनों प्राणी, गोपालबाबू और सुशीला, बातचीत कर ही रहे थे कि उन्होंने मुनीलाल और धुनीलाल को रास्ते पर आते देखा। गोपालबाबू ने फुसफुसाकर पत्नी से कहा-

"दोनों बच्चों के संस्कार बहुत प्रखर हैं।"

गोपालबाबू ने यह कहकर मुँह बंद कर लिया और पत्नी पर से दृष्टि उठाकर मुनीलाल-धुनीलाल पर डाल दी। दृष्टि पर दृष्टि चढ़ते ही जैसे दृष्टि खुलती भी है और बंद भी होती है, वैसा तो नहीं हुआ, पर दृष्टि के जल में मधुरता अवश्य आ गई थी।

इसी बीच थोड़ी दूर से मुनीलाल बोला-

"प्रणाम गुरुदेव, आपकी चर्चा तो गाँव-गाँव में हो रही है!"

गोपालबाबू के मन में भी ऐसा अनुमान था ही, क्योंकि नए काम की चर्चा उठती ही है। इसलिए गोपालबाबू ने विचार को मोड़ते हुए कहा-

"परसों के कार्यक्रम से तुम लोगों को क्या लाभ हुआ?"

गोपालबाबू ने यह सोचकर कहा कि जब लोग अपना हानि-लाभ, या अच्छा-बुरा समझने लगेंगे, तभी तो हानि को, अर्थात बुराई को पकड़कर लाभ की ओर, यानी अच्छाई की ओर अपने को बढ़ाएँगे। और जब अपने-आप अच्छाई की ओर बढ़ने लगेंगे, तभी तो अच्छे बनते-बनते उतने अच्छे बन जाएँगे, जितने अच्छे रैदास, आत्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता साधक थे। बातचीत का क्रम अलग है, पर व्यावहारिक जीवन का भी कोई क्रम नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है?

अभी हानि-लाभ, यानी नौवीं कक्षा का बाल-बोध जीवन का हानि-लाभ कैसे समझ पाएगा? लेकिन जैसे माता-पिता का आशीर्वाद पाकर मन में हरियाली आती है, जिससे विचार कलशियाने लगते हैं, वैसा ही मुनीलाल को हुआ। मुनीलाल बोला-

“गुरुदेव, कई लोगों ने बाबू से पूछा कि दुखन, क्या मुनीलाल तुम्हारा ही बेटा है?”

दुनिया तो दुनिया है, जहाँ दो रंग का खेल चलता ही रहता है। कोई पिता के बल से चमक पाता है और कोई पुत्र के बल से। खैर, जो है सो है। अभी यदि दोनों बच्चों को, यानी मुनीलाल और धुनीलाल को, केवल वैचारिक ही नहीं, व्यावहारिक जीवन पर भी खड़ा कर दिया जाए, तब जैसे-जैसे उनके विचार पनपेंगे और कलशियाएँगे, वैसे-वैसे उनके क्रियाकलाप भी पनपेंगे और कलशियाएँगे।

गोपालबाबू का मन मान गया। वे बोले-

“बौआ, हमारे पुरखे, यानी पूर्वज, कहा करते थे कि जिस पुरुष में पुरुषत्व, पुरुषपन, पुरुषार्थ और पुरुषता नहीं रहेगी, उसे क्या कहेंगे? पुरुष का झाड़, पुरुष की पूँछ या पुरुष का घेंघ? और जिसमें पुरुष का मुँह भी होगा और मुँह की बोली भी होगी, उसे क्या कहेंगे?”

गोपालबाबू के विचार में दृष्टि थी। पहली दृष्टि तो न मुनीलाल समझ सका और न धुनीलाल, लेकिन दूसरा विचार, ‘समाज का घेंघ’ सुनते ही जैसे मुनीलाल का मन चमका, वैसे ही धुनीलाल का मन भी चमक उठा। इससे

शरीर की भीतरी शक्ति की ऊष्मा दोनों में जाग गई। ऊष्मित होते हुए दोनों एक स्वर में बोले-

"गुरुदेव, मन में केवल विश्वास ही नहीं जागा है, हृदय की धड़कन भी स्वीकार कर रही है कि गुरुदेव गोपालबाबू केवल शिक्षक ही नहीं हैं, जो पढ़ाकर ही भर देंगे, वे जीवनदाता भी हैं।"

जैसे दोनों ने एक स्वर में कहा- वैसे ही एक साथ चुप भी हो गए और धीरे-धीरे गुनगुनाने लगे-

"जीवन को मैंने सौंप दिया, गुरुदेव तुम्हारे हाथों में...।"

शांतचित्त होकर गोपालबाबू बोले-

"बौआ सभ, अच्छी तरह सुन लो। दुनिया जैसे प्रीति का सुकृत्य है, वैसे ही पीड़ा और निर्दयता का कुकृत्य भी है। तुम आँखों से जितनी दुनिया देखते हो, दुनिया केवल उतनी ही नहीं है। यदि वह एक ही होती, तब भी कुछ था, पर वह तो असंख्य है।"

बीच में मुनीलाल बोला-

"गुरुदेव, मैं तो एक ही दुनिया समझता हूँ।"

उसकी बाल-बोध अवस्था समझकर गोपालबाबू बोले-

"जैसे-जैसे बढ़ते जाओगे, वैसे-वैसे दुनिया भी बढ़ती जाएगी। इसलिए धड़फड़ाने से कुछ नहीं होगा।"

परसों के कार्यक्रम से गोपालबाबू के मन में खुशी उमड़ आई थी। केवल मन ही नहीं, जीवन ने भी प्रसन्नता की दिशा में कदम बढ़ा दिया था।

बीच में गोपालबाबू चुप हो गए। चुप होने का कारण यह था कि मन में एक गंभीर सूत्र जाग उठा। सूत्र यह था कि क्यों न दोनों को समझा दिया जाए कि धरती पर दोहरा जीवन भी है। इसलिए इस दोहरेपन को समझकर अपने एकहरे जीवन की राह पकड़नी चाहिए। पर उन्होंने अपने विचार को रोक लिया।

जैसे महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने अभिमन्यु का सिर टटोलकर

परखा था, वैसे ही गोपालबाबू ने मुनीलाल और धुनीलाल का सिर टटोलते हुए सोचा कि अभी यह उचित नहीं है। इसलिए विचार को रोककर गोपालबाबू बोले-

"बौआ सभ, अगले दिन की बातचीत के लिए मन में यह बात रखना कि जीवन कैसे बदलता है?" ❑

प्रीति

☰

जिस दिन से गोपालबाबू का अपने साथियों के बीच मतभेद हुआ, उसी दिन से पहले की हर तरह की प्रीति को भी धक्का लगा। अब तक साथियों के बीच जो एकरूपता की भावना थी, उसमें अविश्वास जाग गया। यों, अविश्वास जागा जरूर, पर पूरी तरह नहीं। पूरी तरह अविश्वास जागने पर सम्बन्ध प्रभावित हो ही जाता है, वैसा नहीं हुआ।

हुआ इतना ही कि मनुष्य को अपने जीवन का रास्ता पकड़ने में परिवार-समाज से लेकर देश-दुनिया तक अनेक व्यवधान आते ही हैं। आएँगे भी क्यों नहीं? जहाँ भूतकाल के विचार और व्यवहार को वर्तमान परिवेश में उपयोगी बनाकर भविष्य के अनुकूल बनाने का प्रश्न हो, वहाँ यह कोई बाल-बोध का खेल तो नहीं है।

स्कूल में छुट्टी होने के बाद, दस कदम आगे बढ़कर गोपालबाबू पीछे मुड़-मुड़कर देखने लगे कि यदि मुनीलाल और धुनीलाल मिल जाएँ, तो बातचीत करते हुए साथ-साथ डेरे पर जाएँगे। यदि दोनों साथ न भी मिलें और एक भी मिल जाए, तो भी अच्छा।

संयोग से मुनीलाल और धुनीलाल के मन में भी यह बात जाग चुकी थी कि गोपालबाबू तो डेरे पर ही जाएँगे। यदि अभी भेंट हो जाए, तो बातचीत करते हुए साथ-साथ जाएँगे। खोजने वाला तो खोजने वाला ही होता है। वह समुद्र जैसी गहराई में जमे पानी के बीच मोती और पहाड़ के पत्थरों में छिपे पारस जैसे पत्थर को भी खोजकर निकाल ही लेता है। जैसी जिसकी भावना होती है, वैसा उसे मिलता भी है।

मुनीलाल और गोपालबाबू की दृष्टि मिली। दोनों के बीच गोपालबाबू आगे थे और मुनीलाल पीछे। अपने कदमों को धीमा करते हुए गोपालबाबू धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। पीछे जो है, उसे भी तो कदम लंबे करने की आवश्यकता है। ऐसा तो नहीं कि दोनों अपने-अपने कदम से ही चलते रहें। यदि ऐसा ही चलता रहा, तो वे एक जगह कैसे होंगे और विचार का एक-सा कदम कैसे बनेगा?

जब मुनीलाल और धुनीलाल गोपालबाबू के पास पहुँचे, उससे पहले ही गोपालबाबू ने उन्हें कनखी से देख लिया था। आगे से ही बोले-

"बौआ सभ, क्या हाल-चाल है?"

यों, बोलते समय गोपालबाबू ने मन का असल भाव मन में ही दबा लिया था। उन्होंने यह दबाया था कि जिस दिन से शिक्षकों के बीच वैचारिक भावना का सूत्रपात हुआ, उसी दिन से उन्होंने अपने जीवन में मोड़ भी ला लिया। वह मोड़ यह था कि साढ़े दस बजे से पाँच मिनट पहले ही विद्यालय पहुँचना है। उसी बीच वे अपने को तरोताज़ा कर लेंगे, अर्थात मल-मूत्र से लेकर मुँह-कान को पानी से सींचने तक का काम पूरा कर लेंगे। घंटी बजते ही बच्चों के बीच कक्षा में पहुँचकर अपना कर्तव्य निभाएँगे। साढ़े चार बजे छुट्टी होगी और वे अपने डेरे पर लौट आएँगे। रही स्कूल के समय की व्यवस्था, तो उसके लिए नियम-कायदे भी हैं ही।

मुनीलाल बोला- "आपका भाषण तो...!"

मुनीलाल के विचार ने गोपालबाबू को इतना उत्सुक बना दिया कि अनायास उनके मुँह से निकल पड़ा- "धुर्र बुद्धू! क्या मैं चोर हूँ जो चोरी-छिपे बोलूँगा?"

गोपालबाबू मुनीलाल और धुनीलाल के प्रति इतने नम्र हो रहे थे कि अपने संतान जैसा व्यवहार करने लगे थे। भाई, जब कोई अपना दुखनामा लेकर आवाज उठाता है, तब पीछे मुड़कर देखना भी उचित नहीं होता।

गोपालबाबू के पास पहुँचकर मुनीलाल बोला- "गुरुदेव, विमलबाबू अफसोस कर रहे थे। वैसे, वे आपसे स्वयं भी कहेंगे, लेकिन दूसरों की चढ़ी

हुई निगाहों के कारण कन्नी काट रहे हैं।"

उसे अपना संगतिया समझकर गोपालबाबू ने अपने पेट का विचार पेट में ही रोक लिया और बोले- "विमलबाबू क्या कोई बँटे हुए आदमी हैं कि मुँह खोलकर बोलने में उन्हें लज्जा होगी?"

अपनी जिज्ञासा से या समय की गति-विधि के कारण, यानी साढ़े चार बजे छुट्टी के समय, आगे-पीछे सब निकलते ही हैं। गोपालबाबू मुनीलाल और धुनीलाल के साथ बातचीत करते हुए आगे बढ़ने लगे। इसलिए उनके कदम छोटे हो गए थे। इससे पीछे से तेज चलने वाला आदमी, आगे होने पर भी, पीछे कर देता है। इस तरह स्कूल से निकलने के बाद भी वे पीछे हो गए।

इसी बीच विमलबाबू पास पहुँचकर बोले- "क्या बौआ मुनीलाल?"

तभी विमलबाबू और गोपालबाबू की आँखें एक-दूसरे से मिलीं। अफसोस के आकाश में विमलबाबू को खोया हुआ देखकर गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, हार-जीत के जीवन में न कोई हारता है और न कोई जीतता है। हर आदमी अपनी जिंदगी की भाँज पूरी करता है। उसमें सफल-असफल, तीखा-मीठा या अच्छा-बुरा यदि न हो, तब आप ही कहिए कि क्या होगा?"

जैसे कमर की हूक का रोग छुड़ाने के समय कमर पर रखी कड़ची की दो फाँक बत्तियाँ लपक-लपककर सटती हैं और हूक को भगाती हैं, वैसे ही गोपालबाबू के विचार ने विमलबाबू को भीतर तक छू लिया। लेकिन विचार के दौर में विमलबाबू व्यवहार के स्तर पर इतने पीछे सरक गए थे कि उनका सीना थरथराने लगा। यों, मनुष्य चेतनशील प्राणी है। यदि वह चेतनशील बनकर दृढ़ संकल्प को दृढ़ चेतना से बाँधकर अपने को नव जीवन में उतारना चाहे, तो उतार ही सकता है।

यों, विमलबाबू विज्ञान के शिक्षक थे और गोपालबाबू साहित्य के। इसलिए विद्यालय के शिक्षक-समाज के बीच दूरी थी ही। वैसे दूरी का दूसरा

कारण भी है, जाति-सम्प्रदाय में बँटा समाज। जाति-सम्प्रदाय भी एक-दूसरे से दूरी बनाए हुए हैं। बातचीत के क्रम में लोग दूरी शब्द का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं, पर व्यवहारिक पक्ष में जो दूरी है, उसे दबाकर, यानी छिपाकर, एक-दूसरे की ओर मुँह उठाते ही हैं।

जैसे मोबाइल में अलग-अलग स्टेशन से अलग-अलग भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, उससे कम क्या लोगों की भाषा है? जितने प्रकार के लोगों से विचार-विनिमय करेंगे, उतने ही प्रकार की भाषा और उतने ही प्रकार के विचार मिलेंगे।

इसे दूसरे रूप में इस तरह भी कह सकते हैं कि धर्म और कर्म का जो मूर्त रूप होना चाहिए, वह शब्दों के स्वर में अमूर्त बन गया है। इससे मनुष्य का जीवन रोगग्रस्त हो गया है। खैर, जो है, जहाँ है, वहीं रहे। बेकार में गोपालबाबू या विमलबाबू को इन सब से क्या मतलब? मतलब इतना ही है कि समाज का एक अंग हम भी हैं, इसलिए हमें भी कुछ करने का अधिकार है।

अपने जीवन को अपने ढंग का बनाकर मस्ती से जी लेना, यही तो सबके हृदय में है और सबने अपनी-अपनी नियति भी बना रखी है। यहाँ यह नहीं समझना चाहिए कि आरम्भ से ही अपने समाज में नियतिवाद जीवित दर्शन बनकर चलता आया है।

बातचीत करते हुए गोपालबाबू के साथ विमलबाबू और मुनीलाल-धुनीलाल गोपालबाबू के डेरे पर पहुँचे। परिवार के बच्चों की तरह मुनीलाल और धुनीलाल ने ओसारे से कुर्सियाँ उतारकर दुआर पर लगा दीं। गोपालबाबू और विमलबाबू अगल-बगल एक सीध में बैठकर कान-में-कान सटाकर बातचीत करने लगे।

इसी बीच मुनीलाल और धुनीलाल ने चाय-जलपान की तैयारी की। मुनीलाल तश्तरी में सजाया हुआ जलपान लेकर पहुँच गया। चारों के हिसाब से चार प्लेटों में जलपान परोसा गया था। इसी बीच धुनीलाल भी गिलास और मग में पानी लेकर पहुँच गया।

गोपालबाबू बोले-

"बौआ, चारों प्लेट चार जगह लगा दो। गिलास और मग बीच में रख दो और चारों गिलास पानी चारों लोगों की प्लेट के पास रख दो।"

अब आप प्लास्टिक का गिलास मत समझिए, जो खाते समय उलटकर देह पर कूद जाएगा। पानी केवल देह पर कूदकर गायब नहीं होगा, कुर्सी-टेबल लगे आसन की मेज से गिरकर छाती से नीचे पैर तक भी भिगो देगा। भाई, जब खाने के लिए बैठते हैं, तब स्थिर मन से खाइए। खाते समय यदि बैंक का हिसाब जोड़ने लगेंगे, तब खाएँगे या मन भटकाएँगे? जीवन में यदि एकाग्रता नहीं, तो वह जीवन कैसा जीवन होगा?

चारों लोग जलपान करने लगे। इसी बीच गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, जिंदगी में आदमी क्या लेकर आया है और क्या लेकर जाएगा?"

गोपालबाबू के विचार को विमलबाबू कबीरदास की रूई की तरह धुनने लगे। वे यह धुनने लगे कि गोपालबाबू ने व्यंग्य-बाण छोड़ा है या कर्म-बाण? लेकिन प्रश्न को अथाह समझकर, या प्रश्न के उत्तर को अथाह समझकर, विमलबाबू पीछे हटते हुए बोले-

"भाई साहब, दुनिया में कुछ नहीं है। है बस इतना ही कि प्रेम से जीवन जी लिया जाए।"

इसी बीच जलपान समाप्त हो गया और चारों ने आधा-आधा गिलास चाय भी पी ली। इससे सबका मन हल्का और प्रसन्न हो गया था। आत्मा में रमते राम की तरह गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, प्रेम बनाना पहाड़ नहीं है, प्रेम निभाना पहाड़ है।"

विचार के प्रवाह में, या भावना के प्रवाह में विमलबाबू हिलते हुए बोले-

"आसान भी तो नहीं है।"

मुस्कराते हुए गोपालबाबू बोले- "विवाह का भारी लग्न चल रहा था।

एक जीवन्त कथा कहता हूँ। बाजार से लौट रहा था। बीच में ताड़ी की दुकान थी। दुकान पर बेटे का विवाह कराने वाले लोग भी थे और पाँच-सात मछली-मखान के कारोबारी लोग भी थे। बेटे का विवाह कराने वाले को मोटी रकम मिली थी, इसलिए उनका मन फूला हुआ था ही। वे ताड़ी पीने वालों से पूछ-पूछकर अपनी ओर से सबको ताड़ी पिला रहे थे।

आधा घंटा बीतते-बीतते सबके बीच, यानी बरियातियों और मछली-मखान के कारोबारियों के बीच, ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध बन गया कि तुरंत एक गाड़ी भाड़े पर हुई और आठ-दस लोग बरियाती बन गए। एक तो पैसे का जोश, दूसरे ताड़ी का ताप। मछली-मखान के कारोबारियों ने अपनी ओर से विवाह में पचास हजार रुपये से अधिक खर्च कर दिए। अब आप ही कहिए, वह लाख रुपये का प्रेम हुआ कि नहीं?"

एक तो विमलबाबू का अपना घायल विचार चोट खाकर पहले से ही चोटिल था, उस पर जीवंत घटना सुनकर और भी चोट खा गया। अस्थिर होते हुए वे बोले-

"हाँ, वह तो प्रेम हुआ ही।"

जैसे मरसिया गाने वाला भजनिया-कीर्तनिया की तरह नहीं होता कि एक भजन या कीर्तन समाप्त होने के बाद स्वर-तान की धुन मिलाए। वह तो मरसिया गाने वाले की तरह एक मरसिया समाप्त होते ही जोड़ पर गाता है-

"एक मरसिया खत्म हुआ है, दूसरा शुरू होता है।" उसी तरह गोपालबाबू प्रेम बनने के विचार को आगे जोड़ते हुए बोले-

"विमल भाई, प्रेम बनाने से कठिन है बने हुए प्रेम को निभाना।"

जैसे सेब-अंगूर के बाग में मिथिलांचल का आम-कटहर का बगवान भटक जाता है, वैसे ही विमलबाबू भी भटकने लगे। विमलबाबू का सकुचाया मुँह देखकर गोपालबाबू ने मुनीलाल को आगे करते हुए कहा- "मुनीलाल, जैसे प्रेम होना, किसी से दोस्ती होना आसान है, वैसे ही उसे निभाना कठिन है।"

गोपालबाबू का विचार न मुनीलाल ठीक से समझ सका, न धुनीलाल, और न विमलबाबू ही स्पष्ट रूप से समझ पाए। लेकिन सबने अपने कान हिरण के कान की तरह सुनने के लिए खड़े जरूर कर लिए और मुँह बंद रखा। बातचीत के क्रम में मुनीलाल गोपालबाबू के सामने खुल ही गया था, इसलिए निडर होकर बोला-

"गुरुदेव, अच्छी तरह समझ नहीं पाया।"

मुनीलाल का विचार सुनकर गोपालबाबू हँस पड़े। हँसने का कारण मुनीलाल का ईमानदार विचार था। लोग अपनी कमजोरी अपने मुँह से नहीं कहना चाहते, चाहे बीच में हजारों झूठ का सहारा लेना पड़े या हजारों लोगों को दोषी क्यों न बनाना पड़े। वे झूठ को सत्य बनाने का प्रयास करते रहते हैं।

गोपालबाबू अपने विचार को संतुलित बनाते हुए बोले। संतुलित इसलिए कि एक ओर हाईस्कूल के विज्ञान-शिक्षक हैं और दूसरी ओर नौवीं कक्षा के मुनीलाल-धुनीलाल। ऐसी स्थिति में यदि किसी विषय की व्याख्या होगी, तो दोनों को दृष्टि में रखकर ही होगी, जिससे दोनों समान रूप से विषय को समझ सकें।

वे बोले- "विमलबाबू, जब किसी से प्रेम हो, तो उसका एक मान बनाकर रखना चाहिए कि जिससे जितना प्रेम हुआ, उसमें कमी न आए। यदि वृद्धि हुई, तो वह दिशामुखी होगी ही, पर यदि ऐसा न भी हो, तब भी इतना मान रखना चाहिए कि उसमें कमी न हो।"

मुनीलाल और धुनीलाल ने मन-ही-मन सोचा कि जो विचार ठीक से नहीं समझेंगे, उसे दूसरे दिन दोहराकर पूछ लेंगे। इसलिए वे मुँह बंद रखे रहे। विमलबाबू बोले- "एक मजबूत विचार जरूर मिला।"

मुस्कराते हुए गोपालबाबू बोले- "जब प्रेम बनेगा और उसमें कमी नहीं आएगी, तब उसे निभाने का रास्ता भी होगा न?"

विमलबाबू बोले- "यह तो विज्ञान के सूत्र की तरह सूत्रवत होना चाहिए।"

जैसे ही विमलबाबू बोले- वैसे ही गोपालबाबू ने विचार को पकड़कर आगे कहा-

“प्रेम बनने के बाद न विचार में रूखापन आने दीजिए और न क्रूरता। उसी तरह प्रेम को बासी भी मत होने दीजिए। मतलब, सम्बन्ध में गतिशीलता रखिए। सम्बन्ध में जब गतिशीलता लाएँगे, तब भय और डर को भी मन से हटाना पड़ेगा।”

लंबी साँस छोड़ते हुए विमलबाबू बोले-

“आगे का विचार अगले दिन। अब चलता हूँ।” ❑

पुरुषार्थ

☰

विद्यालय खुला रहने के बावजूद आज जैसे शिक्षकों की उपस्थिति कम रही, वैसे ही छात्रों की उपस्थिति भी कम रही। यों, गोपालबाबू और विमलबाबू दोनों को पता था कि आज साल का अंतिम लग्न है, यानी विवाह का दिन। इसलिए जैसे शिक्षक शादी-विवाह में फँसे हुए हैं, वैसे ही छात्र भी उलझे हुए हैं। गोपालबाबू और विमलबाबू एक जगह की तो बात ही क्या, चार-चार, पाँच-पाँच जगह से आमंत्रित थे, पर वह रात का कार्यक्रम था। इसलिए जैसे शिक्षक, वैसे ही छात्र भी अपने-अपने परिवार और सगे-सम्बन्धियों के काम में बँधे होने के कारण विद्यालय से अनुपस्थित रहे।

अंतिम लग्न होने के कारण गाँव-गाँव में ऐसा वातावरण बन गया था कि लूले-लँगड़े भी उठ जाएँगे। मतलब, उनका भी विवाह हो ही जाएगा। एक दिन पहले से, यानी कुमरम के दिन से ही पटाखों के फूटने से हलचल मच गई थी। साथ ही डीजे और गाड़ी-सवारी की आवाजों से गाँव-गाँव का वातावरण ही बदल गया था।

विद्यालय खुला रहने के कारण गोपालबाबू और विमलबाबू अपने निर्धारित समय से कुछ पहले, यानी साढ़े दस बजे से पहले ही विद्यालय आ गए। यों, विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या आधे से भी कम थी, पर वे सभी कक्षाओं के विद्यार्थी थे। विद्यालय में नौ शिक्षक और साढ़े तीन सौ विद्यार्थी रहते हुए भी केवल सौ-सवा सौ विद्यार्थी और दो शिक्षक ही पहुँचे थे।

दोनों स्टाफ रूम में बैठकर सोचने लगे कि दो लोगों से शिक्षण का काम कैसे चलेगा। गोपालबाबू ने विमलबाबू से पूछा- “विमलबाबू, क्या करें?

कम-से-कम चार-पाँच लोग रहते, तब न किसी तरह आधा-अधूरा पढ़ाना सँभाल सकते थे। दो आदमी क्या कर सकते हैं?"

जैसे गाँव-घर में कहावत है- "प्रेत चाहे अशौच", वैसे ही विमलबाबू बोले-

"छात्रों को छुट्टी दे देना ही अच्छा होगा।"

गोपालबाबू के मन ने भी मान लिया कि जब पढ़ाई का काम सँभाला नहीं जा सकेगा, तब दूसरा उपाय ही क्या है। उन्होंने स्वीकृति दे दी। विमलबाबू ने छात्रों को छुट्टी दे दी। छात्र घर की ओर चल पड़े। स्टाफ के रूप में केवल दोनों ही रह गए।

यों, विमलबाबू मन-ही-मन अपने समय का लाभ जोड़ रहे थे कि अच्छा हुआ, छुट्टी हो गई। बाजार का काम सँभाल लेंगे। कारण यह कि रविवार को जैसे विद्यालय में छुट्टी रहती है, वैसे ही बाजार भी बंद रहता है। इसलिए छुट्टी के दिन बाजार का काम नहीं हो पाता। अच्छा हुआ, आज अवसर हाथ आ गया। एक साथ दोनों काम चल जाएँगे, यानी विद्यालय में उपस्थिति भी दर्ज हो गई और बाजार का काम भी हो जाएगा।

छात्रों को छुट्टी देने के बाद विमलबाबू ने गोपालबाबू से कहा- "मास्साब, हम दोनों ही भूत की तरह बैठे-बैठे बातचीत करते रहें, इससे अच्छा है कि हम दोनों भी चलें।"

विमलबाबू का विचार सुनकर गोपालबाबू मुस्कराकर हँसने लगे, पर मुँह से कोई शब्द नहीं निकाला। गोपालबाबू की हँसी देखकर विमलबाबू का मन अथाह पानी में डूबने लगा। इससे उनके मन में कोई स्पष्ट विचार उठ ही नहीं रहा था। भीतर-ही-भीतर उनका अपना मन अपने को धिक्कार भी रहा था कि गोपालबाबू जैसे गंभीर विचार वाले आदमी हँस रहे हैं। बिना कारण टिटही थोड़े ही बोलती है।

विमलबाबू ने मन-ही-मन कितना भी प्रयास किया, पर गोपालबाबू की हँसी का अर्थ समझ में नहीं आया। आता भी कैसे? नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र से यदि उनका परिचय हुआ रहता, तब न। अब तक के जीवन

में तो उन्हें अवसर ही मिला था भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र पढ़ने का।

उसमें भी अपना समाज तो ऐसा नंगर-मुरिया बन गया है कि जब बाल-बोध अवस्था में, अर्थात बच्चे से विद्यार्थी जीवन तक, कोई आर्थिक उपार्जन नहीं करता, तब माता-पिता अपनी हड्डी तक निचोड़कर पढ़ाई-लिखाई पर जितना खर्च करते हैं, उतना जवान होने के बाद, अर्थात आर्थिक उपार्जन करने के बाद, वह स्वयं थोड़े ही करता है। कहेंगे कि पढ़ने-लिखने का समय ही नहीं मिलता, तब बेकार क्यों? ठीक है, आपका विचार न भी मानें या मान भी लें, उससे जिसे कहा जा रहा है, वह थोड़े ही मानेगा। वह तो अपनी ही मति से चलेगा। ठीक है, चले, लेकिन सिर में जो कुत्ते का विष चढ़ा है, उसे कोई दूसरा उतारेगा? यदि नीतिशास्त्र और साधना-क्रिया से भेंट हुई रहती, तब न अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत कर्म से भेंट होती। पर उसे कोई दूसरा दिखाएगा या अपने लिए स्वयं खोजकर लाएगा और देखेगा?

गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, दुनिया में न कोई किसी का मालिक है और न गुलाम। सब अपने-आप मालिक भी हैं और अपने-आप गुलाम भी।"

विमलबाबू को जैसे नए विचार से भेंट हुई, वैसे ही वे चौंक उठे। विज्ञान के शिक्षक होने के कारण उनके मन ने इतना तो मान ही लिया था कि यहाँ, अर्थात अपने समाज में जो अंधविश्वास और रूढ़िवादिता है, उसे विज्ञान ही जड़ से मिटा सकता है। हम देखते ही हैं कि साँप का विष हो या कुत्ते का, पहले जिसे मंत्र से झाड़ा जाता था, उसका अब उपचार हो रहा है। लेकिन अब तक विमलबाबू के मन में यह आया ही नहीं था कि जहाँ लोहे के इंजन को भी सिन्दूर-पीठार और फूल-पत्ते से पूजा जाता है, वहाँ लोग यही तो समझेंगे कि अब बलुआहा महादेव नहीं, लोहरौआ महादेव पूजे जा रहे हैं।

सोचते-विचारते, अचेतते-पचेतते, विमलबाबू को जीवन की सीमा की एक रेखा मिल गई। रेखा यह मिली कि पाँच दिन पहले तक उनका जो

सम्बन्ध गोपालबाबू के साथ था, उसमें कुछ-न-कुछ संचरण अवश्य आया है। इससे इतना लाभ तो हुआ ही कि गोपालबाबू के सामने अपनी कमजोरी, यानी अपनी सीमा व्यक्त करने से आज ऐसा स्नेह बन गया है कि उनके अपने मन ने भी मान लिया कि जैसा पुरुषार्थ गोपालबाबू में है, वैसा विद्यालय में किसी में नहीं है। अर्थात विद्यालय में जितने शिक्षक हैं, उनमें इनके जैसा पुरुषार्थ किसी में नहीं है।

रहता भी कैसे? हाईस्कूल के शिक्षक एक स्तर के हैं, एक विद्यालय में काम भी करते हैं। इतना ही क्यों, एक ही कमरे में सभी बैठते भी हैं। फिर भी मन में कभी ऐसा विचार नहीं उठता कि एक स्तर के विद्यालय में जो पढ़ाई होती है, उसका स्तर क्या है। चाहे वह साहित्य हो या वाणिज्य, क्या साहित्य का स्तर और वाणिज्य का स्तर एक रंग का है या दो रंग का? सामाजिक स्तर से फिजिक्स हो या केमेस्ट्री, एक स्तर के एक विद्यालय में एक स्तर का होना ही उचित नहीं होगा?

गोपालबाबू और विमलबाबू, द्वापर युग के महाभारत के रणक्षेत्र में जैसे एक ओर कौरव-सेना और दूसरी ओर पाण्डव-सेना आँख-पर-आँख चढ़ाए खड़ी थी, वैसे ही विचार के दौर में एक-दूसरे की आँखों में आँखें डाले थे। अपने को छोटे भाई के रूप में स्थापित करते हुए विमलबाबू बोले-

"भाई साहब, आपकी हँसी का...?"

विमलबाबू आधा ही बोले थे कि इसी बीच गोपालबाबू ने कहा-

"जिज्ञासा अच्छी है, लेकिन अच्छाई की भी सीमा होती है न। एक स्तर के जीवन में एक स्तर की ही सारी चीजें होनी चाहिए।"

अपने हिसाब से, अर्थात विचार के हिसाब से, गोपालबाबू बोले और अपने हिसाब से विमलबाबू ने समझा। लेकिन भ्रम यह हुआ कि विचार का भी अपना स्तर होता है। जो अपनी सीमा का उल्लंघन करेगा, वह अनुपयुक्त हो जाएगा। विमलबाबू बोले- "भाई साहब, आपकी मुस्कराती हँसी का क्या कारण है?"

योग्य प्रश्नकर्ता के प्रश्न का उत्तर देने वाला भी अपने को योग्य बना

ही लेता है। गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, काम के हिसाब से हम दोनों अक्षम हैं, लेकिन इतना तो सत्य है कि पढ़ाई भले नहीं चल रही है, पर विद्यालय में उपस्थिति तो मानी ही जाएगी न?"

विचार के प्रवाह में विमलबाबू बोले-

"हाँ, वह तो मानी ही जाएगी।"

"अपने अधिकार के साथ अपना कर्तव्य भी तो देखना चाहिए। जब अपना कोई मालिक नहीं, तब अपना कोई...?"

विमलबाबू बोले-

"हाँ, यह तो है ही।"

तब गोपालबाबू बोले-

"साढ़े दस बजे से साढ़े चार बजे तक क्या हम लोग श्रमिक नहीं हैं? वहाँ यदि हम समय में छल-कपट करेंगे, तो क्या ऐसा आचरण शिक्षक को शोभा देना चाहिए?"

विमलबाबू को जैसे जीवन का एक भ्रम टूटता हुआ लगा। उसी तरह उनके विचार का स्तर भी ऊपर उठ गया। इससे उनके मन में निष्पक्ष विचार का अंकुर भी जन्म लेने लगा। विमलबाबू बोले-

"नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।"

संयोग बना। छुट्टी होने के बाद मुनीलाल और धुनीलाल पहुँच गए। जैसे कृष्ण अर्जुन के रथ के घोड़ों की लगाम पकड़कर उन्हें पीछे की ओर खींचते थे, वैसे ही गोपालबाबू ने अपने मन के विचार को शिष्टाचार की लगाम से पकड़कर पीछे खींच लिया। पीछे खिंचते ही मन में चैन आया। वे बोले-

"अच्छा हुआ कि दोनों बच्चे भी आ गए। अब तो हम चार लोग हो गए। चार दिशाओं के चार विचार आने से एक सामाजिक विचार तो बन ही जाता है।"

मुनीलाल और धुनीलाल के विचार में सुधार हो ही गया था। वे जब भी अपने से शिष्ट व्यक्ति के पास पहुँचते, सबसे पहले बैठने की व्यवस्था पर दृष्टि देते। मन में और विचार जो भी उठा हो, पर एक विचार तो उठ ही गया था कि पहले कैसी बैठक थी और अब कैसी है।

अपने विचार को चौकोर बनाते हुए गोपालबाबू बोले-

"बौआ सभ, कान खोलकर सुन लो कि हम सब एक हो गए हैं। जब एक हो गए हैं, तब एक विचार का काम भी तो होना चाहिए।"

धुनीलाल बोला-

"हाँ, वह तो होना ही चाहिए।"

गोपालबाबू बोले-

"एक विचार का कैसा काम होना चाहिए?"

जैसे मुनीलाल और धुनीलाल का मन उलझकर घर की ओर हो गया था, वैसे ही विमलबाबू के साथ भी होने लगा। लेकिन उन्होंने इतनी होशियारी जरूर की कि अपने विचार को अपने मन में ही रोक लिया।

अपना शिष्टाचार देखकर गोपालबाबू के मन ने कहा कि विद्यार्थियों के बीच किसी शिक्षक से अनुशासित ढंग से कुछ पूछना उचित है। लेकिन यहाँ न तो उसकी आवश्यकता है और न अनिवार्यता। इसलिए बेकार कुछ बोलना नहीं होगा। बीते दिन का कर्म, यानी काम, सुकर्म हुआ या कुकर्म, इसकी समीक्षा करते हुए सुकर्म के भूत को भूत की जड़ से पकड़कर वर्तमान में ले आना ही अच्छा होगा। भविष्य तो आने वाला कल है।

गोपालबाबू बोले-

"विमल भाई, सृष्टि की सृष्टि मनुष्य है, जो दो रूपों में, अर्थात दो लिंगों में है। हम लोग पुल्लिंग के रूप में पुरुष वर्ग की पंक्ति में हुए।"

गोपालबाबू के विचार को जैसे मुनीलाल, वैसे ही धुनीलाल भी सिर घुमाकर समझने का प्रयास कर रहा था। लेकिन ऐसा नहीं था कि विमलबाबू नहीं समझ रहे थे। वे भी अच्छी तरह समझ रहे थे। इसी बीच वे बोले- "पुरुष

से ही तो पुरुषार्थ बनेगा।"

भाषा-विज्ञान का सूत्र गोपालबाबू के मन में जाग गया। शब्दों का मेल देखकर उनके अपने मन ने उन्हें उत्साहित किया। भाई, जिसका विवाह कन्या-वर देखकर होता है, वह तो देखा-सुना हुआ विवाह हुआ, लेकिन जिसमें ऐसा नहीं हुआ, या हुआ भी, उसे गाँव से भगा देंगे, क्या यह उचित होगा?

गोपालबाबू बोले-

"विमल भाई, आप विज्ञान के शिक्षक हैं, दुनिया की गतिशीलता जानते ही हैं।"

स्वीकार करते हुए विमलबाबू बोले-

"हाँ, वह तो है ही।"

जैसे बाँस की टोकरी पर चढ़ी मछली को मछुआरा अपना समझकर स्नेह से छाँट लेता है, वैसे ही गोपालबाबू ने विमलबाबू को अपना समझकर कहा-

"विमलबाबू, कोई भी व्यक्ति अपने दृढ़ संकल्प के साथ दृढ़ होकर, दृढ़ जीवन के निर्माण में लगकर ही अपना जीवन निर्मित कर सकता है।"

जैसे चूल्हे पर चढ़ा बर्तन काला तो हो ही जाता है, लेकिन जब उसे मंजन से माँजा जाता है, तो वह भी चमक उठता है, वैसे ही विमलबाबू के मन के साथ उनके हृदय में भी चमक उठी। वे भीतर से चमक तो उठे, लेकिन मुँह से कोई शब्द नहीं फूट रहा था।

चारों लोग, अर्थात गोपालबाबू, विमलबाबू, मुनीलाल और धुनीलाल, एक-दूसरे के मुँह की ओर देखते रहे। कोई कुछ नहीं बोला। लेकिन जैसे बाढ़ की धारा के प्रवाह को रोकना कठिन हो जाता है, वैसे ही गोपालबाबू के भीतर भावना की लहर जाग गई। वे बोले-

"विमल भाई, आत्मा परमात्मा बन सकती है। इस सूत्र के जो पहले सूत्रधार हुए, उन्होंने बहुत बड़े सत्य का अनुसंधान किया। इसलिए उनके

इस गुण को पौरुष का गुण माना जाएगा न?"

सहमत होते हुए विमलबाबू बोले-

"हाँ, वह तो माना ही जाएगा।"

विमलबाबू के विचार की भूख का प्रवाह देखकर गोपालबाबू बोले-

"और उसी तरह जो मिथ्यादृष्टि है, यानी गलत दृष्टि, उसे भी तो सम्यक दृष्टि बनाया जा सकता है न?"

स्वीकार करते हुए विमलबाबू बोले-

"हाँ, उसे तो बनाया जा सकता है।"

गोपालबाबू आगे बढ़ते हुए बोले-

"जिसका अपना कोई संकल्प नहीं है, जो निराधार और असहाय है, वह भी तो संकल्पित होकर अपना जीवन-निर्माण कर ही सकता है न?"

विमलबाबू ने अपनी आँखें गोपालबाबू की आँखों से हटाकर मुनीलाल पर डालीं। मुनीलाल के चेहरे से समझ में आ रहा था कि वह पूरी तरह मग्न है। विमलबाबू बोले-

"वह तो निर्माण कर ही सकता है।"

आनंद की भी अपनी सीमा होती है। अपनी सीमा पर खड़े होते हुए गोपालबाबू बोले- "विमल भाई, प्रमादी कैसे अप्रमादी बन सकता है और सुरागी कैसे विरागी बन सकता है, यह दूसरे दिन के लिए रहने दीजिए। क्यों धुनीलाल?" ❑

मन अटक गया

☰

कल, जब से विमलबाबू गोपालबाबू के यहाँ से लौटे थे, तब से उनका मन जैसे धरती और आकाश के बीच की सीमा, यानी क्षितिज पर अटक गया था। दूसरे दिनों की तरह न रात के भोजन में उबली अरहर की दाल में आमिल का वह स्वाद मिला, जैसा और दिनों में मिलता था, न घी लगी रोटी में, न मूँगफली डाली हुई सजमनि-तरकारी में और न अंगूर की चटनी में। उखड़े हुए मन में सब कुछ उखड़ा-उखड़ा ही लगता है। शायद विमलबाबू के साथ भी वही हुआ।

इतना ही नहीं, भोजन करने के बाद जब विमलबाबू बिछावन पर आए, तो दूसरे दिनों की तरह बिछावन पर पड़ते ही कुछ ही देर में नींद तुरंत नहीं आ गई। यह कहना भी ठीक नहीं होगा कि बिल्कुल नींद नहीं आई। आई, लेकिन आधी रात के बाद। उसमें भी एक और व्यवधान बीच में आकर खड़ा हो गया। वह यह कि जैसे दस्त लगे बच्चे को क्षण-क्षण पानी भी चाहिए और पेशाब भी लगता है, वैसे ही उन्हें बार-बार पेशाब लगने लगा।

पेशाब-पैखाने को तो आप जानते ही हैं कि दूसरे सिपाही थोड़ी ढिलाई दे भी दें, पर नेपाली सिपाही की तरह पेशाब-पैखाना ढिलाई नहीं देता। रात भर में कुल मिलाकर आधा दर्जन बार उठ-उठकर विमलबाबू ने पेशाब किया। यों, पत्नी ने भी एक बार टोका कि ऐसी खुच-खुची क्यों लगी है? पर उसके उत्तर में विमलबाबू क्या कहते, वह पारिवारिक बात हुई।

बिछावन से उठने के बाद दूसरे दिनों की तरह विमलबाबू का मन भकुआया हुआ नहीं था, साफ और हल्का था। संकल्पित व्यक्ति की तरह

विमलबाबू ने अपने नित्य-कर्म पर दृष्टि दौड़ाई। पैखाने की कोठरी के उस बिन्दु पर जाकर उनकी दृष्टि अटक गई, जहाँ वे बेकार में सिगरेट पीते रहते थे और मन को दिल्ली-बम्बई में घुमाते रहते थे, और जिस काम से आए थे, उसी को भूल जाते थे।

विमलबाबू का मन उत्साहित था ही, इसलिए नए-नए उत्साह लता की डाल-पत्तियों के सिरों की तरह धरती पकड़ते हुए विचार करने लगा कि जीवन के हर काम को जब तक समय के अनुसार सीमाबद्ध नहीं करूँगा, तब तक जीवन वैसे ही बिखरा और फैला रहेगा, जैसे घर में पुरानी पौंती-पेटारी बिखरी और फैली रहती है।

विमलबाबू ने निर्धारित समय पर डेरे से निकलने का विचार मन में रोप लिया। जीवन अभी अनभ्यस्त था, इसलिए क्रिया की पद्धति में समय की घट-बढ़ तो हुई ही, पर उस पर उन्होंने इस कारण ध्यान नहीं दिया कि सोई हुई रात में कुछ वैचारिक समस्याएँ जाग गई थीं। उनका समाधान वैचारिक और व्यावहारिक रूप से कैसे किया जाए, इसी जगह आकर मन कसकर अटक गया था।

इससे मन थरथरा गया। थरथराता भी क्यों नहीं? अपनी आँखों से वे यह भी देखते हैं कि कोई दिन-रात किताब चाटकर विद्वान बनता है, तो कोई सपने में भी विद्वान बनता है, और उसी तरह आशीर्वाद से भी विद्वान होते हैं। अचानक विमलबाबू का मन डगमगाने लगा, पर मन को स्थिर करते हुए वे गोपालबाबू से भेंट करने के लिए निकल पड़े।

अपने यहाँ कहा भी गया है-

“हड़बड़ी ब्याह, कनपटी सिंदूर।” विमलबाबू के साथ वही हुआ। रोज का उनका जो काम था, अर्थात हाईस्कूल का शिक्षक होने के कारण वे जब नौ बजे से स्कूल जाने की तैयारी में जुट जाते थे, तभी समय पर कक्षा में पहुँच पाते थे। पर इस पर उनका ध्यान ही नहीं रहा कि आज कौन-सा दिन है। बातचीत का कोई आदि-अन्त थोड़े ही होता है। मार्क्स ने भी कहा ही है कि यहाँ के लोग बात बनाने वाले अधिक हैं।

गाँव के रास्ते पर पाँव रखते ही विमलबाबू के मन में अपने-आप उठ गया कि फिजिक्स-कैमेस्ट्री के सूत्र की तरह जीवन का सूत्र बनाकर केवल रट लिया है कि छह दिन स्कूल जाएँगे और सातवें दिन नहीं जाएँगे। तुरंत ही विमलबाबू का मन लौट गया। लौटता भी क्यों नहीं? आज गुरुवार है। यदि गोपालबाबू के यहाँ जाऊँगा, तो मेरा भी नुकसान होगा और उनका भी। मेरे ही कारण उन्हें नुकसान होगा। इससे अच्छा यही है कि स्कूल बंद होने के बाद लौटते समय उन्हीं के साथ लग जाऊँ। रात तो अपने हाथ की है। दिन को किसी ने छीन नहीं लिया है। लेकिन चौबीस घंटे में बारह घंटे की रात, यानी आधी जिंदगी, तो अपने हाथ में है ही।

गाँव के रास्ते पर चढ़ते ही विमलबाबू जैसे अपना जीवन भूलने लगे। हम देखते हैं कि सब अपने को स्वतंत्र करना चाहते हैं, लेकिन अपने यहाँ तो वेद का ही विधान है कि कर्म करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। बुरा करेंगे तो नरक जाएँगे, अच्छा करेंगे तो स्वर्ग जाएँगे। इसलिए मैं अपने ऊपर दोष क्यों लूँ?

रास्ते से लौटकर दरवाजे के ओसारे की कुर्सी पर बैठते हुए विमलबाबू मन-ही-मन सोचने लगे कि आज क्या-क्या करना है। आधा-अधूरा मन यह भी मान रहा था कि जब अपने किए का फल अपने को ही मिलता है, तब जानते-बूझते अपने लिए अच्छा ही क्यों न किया जाए, जिससे बुरी वृत्ति अपने-आप को उसी वृत्ति के चक्कर में न कटवाए।

जैसे सोए रहने पर आदमी दुनिया को भूलकर स्वप्नलोक में घूमता है, वैसे ही जागते रहने पर भी मनुष्य का मन घूमता ही रहता है। अचानक विमलबाबू का मन उस सीमा पर पहुँच गया, जहाँ उन्होंने स्वयं अपने को देखा कि विज्ञान का विद्यार्थी हो या शिक्षक, चाँद की तरह काला धब्बा लगा ही हुआ है। वह धब्बा यह कि समाज में यह धारणा फैली हुई है कि विज्ञान पढ़ने वाले धर्म-विरोधी होते हैं।

अपने साथी-संगी के समुदाय के बीच वे स्वयं भी एक सदस्य थे, इसलिए विमलबाबू के अपने मन ने भी यह मान लिया। मन मानता भी क्यों

नहीं? हाईस्कूल में जिस दिन आठवीं में नाम लिखाया था, उसी दिन से बी.एस-सी. तक विद्यार्थी के रूप में विज्ञान पढ़ा और बी.एस-सी. करने के बाद हाईस्कूल में विज्ञान के शिक्षक हैं ही। तब दूसरे मानें या न मानें, भले लोग उन्हें भुसकौला शिक्षक ही क्यों न कहें, पर स्कूल में पढ़ाते तो वही हैं न।

समाज के बीच जो ऐसी धारणा बनी हुई है, उसका निराकरण कौन करेगा? यह समाज के प्रबुद्ध वर्ग का ही कलंक है। और जिस वर्ग ने स्कूल-कॉलेज का मुँह ही नहीं देखा, उसके बूते कितना होगा?

विचार के दौर में विमलबाबू जितना दौड़ना चाहते थे, उतना ही केंचुल में फँसे साँप की तरह अपनी ही केंचुल में उलझते गए। दो विचारों की पंचायत है, इसलिए दोनों के विचार समझे बिना कुछ कैसे कहा जा सकता है? यदि एक भाग थोड़ा ठोस है, तो दूसरा भाग पूरी तरह खोखला है। मतलब, आठवीं से बी.एस-सी. तक फिजिक्स-कैमेस्ट्री तो विमलबाबू ने पढ़ी थी, लेकिन धर्म और अध्यात्म केवल सुना था। वह कैसे होता है और कैसे चलता है, इन सब बातों को वे कुछ नहीं समझते थे।

यों, समाज के बीच ऐसी धारणा भी फैली हुई है कि मन की असली बात दूसरे से नहीं कहनी चाहिए, यानी पूछनी नहीं चाहिए। पर अभी असली क्या और नकली क्या, इसे छोड़िए। अचानक विमलबाबू की अपनी इच्छाशक्ति जाग उठी। इच्छाशक्ति जागते ही मन ने विचार दिया कि जैसे लोग कहते हैं-

"छौड़ा-मारैड़ की खेती, नहीं उपजी तो किसका घाटा," वैसा नहीं करना है। सोच-विचारकर कुछ करना है।

अचानक विमलबाबू के मन को उनके अपने ही विचार ने धक्का दिया कि दुनिया में कोई किसी को हितैषी, अपेक्षित, दोस्त-मित्र या भाई-बन्धु क्यों बनाता है? इसी कारण न कि सब साथ मिलकर रहें। ऐसी स्थिति में यदि मन के विचार को मन में ही छिपाकर रखेंगे और दूसरे को समझने नहीं देंगे, तब भगवान-मालिक छोड़कर दूसरा क्या होगा?

अचानक विमलबाबू का अपना विवेक झुककर आँख बन गया और उन्हें दृष्टि दी कि छुट्टी के बाद जब गोपालबाबू से भेंट करूँगा, तो पहला प्रश्न यही पूछूँगा, अर्थात विज्ञान और धर्म क्या हैं और क्यों एक-दूसरे के विरोधी माने जाते हैं?

नौ बजे के बाद से विमलबाबू स्कूल की तैयारी में जुट जाते हैं। अब क्या वह समय रहा कि एक गमछा या चादर देह पर ले लिया, वही शरीर का पर्दा हो गया, और कोई भी काम, राजदरबार से लेकर खेत-पथार तक, उसी से करते हुए जिंदगी चला ली। वैसे आज का जीवन भारी भी हो गया है। जूता पॉलिश करने वाला भी महँगा हो गया है। इसलिए जूता पॉलिश महँगा होने पर विमलबाबू स्वयं अपने जूते पॉलिश करते हैं। उसी तरह कपड़ों पर इस्त्री भी स्वयं करते हैं। जब इस्त्री स्वयं करते हैं, तब कपड़ा कोई दूसरा धोएगा या स्वयं ही धोना पड़ेगा? खैर, जो भी हो, घंटे भर की मेहनत में विमलबाबू सारे काम निपटा लेते हैं।

कोई नया विचार मन में आने पर या कोई नया शब्द सीखने पर मन में जैसे बराबर यह बना रहता है कि कहीं भूल न जाएँ, वैसे ही विमलबाबू के मन में भी हो रहा था। खैर, जो होता हो, पर इतनी ईमानदारी तो वे रखते ही हैं कि जैसे महीने-महीने वेतन लेते हैं, वैसे ही घंटी-घंटी अपनी ड्यूटी, यानी पढ़ाने का काम, करते भी हैं।

यों, विमलबाबू अपनी कक्षा ईमानदारी से लेते हैं। ईमानदारी क्या, पढ़ाने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि जैसे जीभ पर रखा रहता है। हुआ तो हनुमान चालीसा या सत्यनारायण भगवान की कथा की तरह। अपने कान सुनें या न सुनें, वे धाराप्रवाह सुना देते हैं। उसमें बेईमानी करने की कहाँ कोई गुंजाइश है?

एक सीमा पर पहुँचने के बाद विमलबाबू के अपने मन ने जागकर कहा कि हनुमान चालीसा और सत्यनारायण भगवान की कथा को मैंने स्वयं पढ़ा थोड़े ही है। वह तो गाँव-समाज में सुनते-सुनते रट गई है। लेकिन हनुमान क्या थे, कैसे थे, उनकी चालीसा क्यों चल रही है, उस पर कभी

दृष्टि कहाँ गई है!

साढ़े चार बजे की घंटी बजते ही विमलबाबू का मन जैसे प्रसन्न और तरोताज़ा हो गया। कहेंगे कि ड्यूटी करने के बाद सबको थकान आती है, फिर विमलबाबू का मन तरोताज़ा कैसे रह गया? आपका विचार काटने योग्य नहीं है, पर यह भी तो सोचना पड़ेगा कि थकान दो तरह की होती है, यानी देह की भी और मन की भी।

देह की थकान वहाँ नीचे उतर जाती है जहाँ किसी लटके हुए फल को देखकर मन अटक जाता है। विमलबाबू के साथ वही हुआ। धर्म और विज्ञान के बीच क्या दूरी है और क्या निकटता, इसी में उनका मन ऐसे फँस गया था जैसे चोटी में चिड़चिड़ी लग गई हो। एक ओर से छुड़ाइए, तो दूसरी ओर पकड़ लेगी।

गोपालबाबू के साथ होने के लिए जब विमलबाबू ने कदम बढ़ाया, तो मन में उठा कि मुनीलाल और धुनीलाल को भी साथ ले लेना अच्छा रहेगा। अच्छा इसलिए कि सत्य विचार जितना उजागर होगा, उतना कल्याण होगा। गलत काम करने वाले के मन में ही यह रहता है कि पत्नी पर भी विश्वास न करो, पता नहीं कब भेद खोलकर बेइज्जत कर दे।

एक ही स्कूल और एक ही समय, यानी एक स्कूल में प्रवेश करने और निकलने का समय एक ही होता है। इसलिए एक-दूसरे से भेंट होने में भी सुविधा होती ही है। विमलबाबू में इतना सुधार तो हो ही गया था कि मुनीलाल और धुनीलाल को जिस दृष्टि से वे कल तक देखते आए थे, उसमें परिवर्तन आया था। अब स्कूल के विद्यार्थियों की जगह परिवार के छोटे भाइयों का भाव जाग गया था।

चारों एक साथ हुए, तो सब गोपालबाबू के डेरे की ओर बढ़ने लगे। यों, विमलबाबू का मन भेंट होते ही, अर्थात गोपालबाबू से आमने-सामने होते ही, प्रश्न पूछने के लिए छटपटा रहा था, लेकिन अपने आगे-पीछे विद्यार्थियों और शिक्षकों को देखकर उन्होंने मन को दबा लिया। गाँव-घर की बातचीत करते हुए चारों चल तो रहे थे, पर विमलबाबू का मन अपने

प्रश्न पर ही अटका हुआ था।

डेरे पर आते ही मुनीलाल और धुनीलाल ने बैठने की व्यवस्था की। दोनों को, अर्थात गोपालबाबू और विमलबाबू को बैठाकर, वे जलपान और चाय की तैयारी करने लगे। तैयारी क्या करते, सब कुछ तो तैयार ही था। केवल उसे उचित ढंग से उपयोग में लाना था।

जलपान, चाय और पान हो जाने के बाद विमलबाबू ने गोपालबाबू से पूछा-

"भाई साहब, समाज में लोग विज्ञान पढ़ने वालों को धर्म-विरोधी समझते हैं, उसका क्या कारण है?"

विमलबाबू का प्रश्न सुनकर गोपालबाबू मन-ही-मन उत्तर आँकने लगे। उन्हें लगा कि आज की बैठक तो पानी के नीचे जमी हुई तलछट से भी नीचे उतर जाएगी, तब विमलबाबू का मन हल्का कैसे होगा? तन, मन और धन जितना हल्का रहे, उतना अच्छा होता है। घंटे भर की बैठक का अनुमान लगाते हुए गोपालबाबू बोले-

"जिसे हम ज्ञान मानते हैं, वह हुआ जानना।"

सहमति देते हुए विमलबाबू बोले-

"हाँ, वह तो हुआ ही।"

गोपालबाबू आगे बोले-

"और जिसे हम आचार समझते हैं, अभी आचार से आचार्य मत समझिए, वह हुआ करना, यानी कर्म।"

मन-ही-मन विमलबाबू अपने विचार और गोपालबाबू के विचार को काट-छाँटकर, तह-दर-तह मन में रखते हुए बोले-

"जानना और करना हुआ आचार-विचार।"

सिर हिलाते हुए गोपालबाबू बोले-

"हाँ। और ज्ञान-आचार, यानी आचार-विचार, जब गहरे और प्रगाढ़ बनते हैं, तब कर्म बनकर अपने-आप निकलने लगते हैं।"

यों, बोलने के क्रम में गोपालबाबू बोलते चले गए, लेकिन बाद में उन्हें लगा कि विचार दूसरी ओर बह गया। संयोग भी अच्छा रहा कि इसी बीच विमलबाबू ने फिर याद दिलाया-

"भाई साहब, धर्म और विज्ञान का विचार तो पीछे छूट गया।"

बात महसूस करते हुए गोपालबाबू बोले-

"समय का ठिकाना ही नहीं रहा। अभी इतना ही समझ लीजिए कि जैसे विज्ञान सत्य है, वैसे ही धर्म भी सत्य है। आगे का विचार आगे।" ❑

नियति और पुरुषार्थ

सूर्यास्त के बाद का समय था। यों अभी अँधेरा फैला नहीं था, पर रात का पहला पहर शुरू हो ही गया था। रविवार होने के कारण गोपालबाबू दिन के काम से निवृत्त होकर दरवाजे के ओसारे की चौकी पर बैठकर चाय पी रहे थे। वे पूरी तरह निश्चिन्त थे। पत्नी को भी यदि परिवार की किसी वस्तु की आवश्यकता होती, तब न वे दौड़-दौड़कर अपनी तरह-तरह की आवश्यकताओं का तगादा करने उनके पास आतीं। वैसा कुछ था नहीं। इसलिए वे आँगन के ओसारे पर बैठकर चाय भी पी रही थीं और मन-ही-मन सोच भी रही थीं कि पहले चाय बनाने के सारे सामान, यानी केतली, कप और छन्ना धो-पोंछकर ले आएँगी, फिर चाय की वस्तुएँ, यानी चायपत्ती, चीनी आदि ठीक से रख देंगी, और उसके बाद दरवाजे से गिलास लाकर उन्हें भी धो-पोंछकर रख लेंगी।

इसी बीच तुरंत उनका अपना विचार बदल गया। अर्थात सुशीला के मन में यह उठा कि एक निश्चित काम एक ही बार कर लेना अधिक अच्छा होगा। बारी-बारी करने से जैसे दलबदलू लोगों के मन में होता है, वैसे ही कर्ता के विचार में भी हो जाता है। यहाँ यह नहीं समझना चाहिए कि विचारगत निर्णय और कर्मगत निर्णय में कहीं-कहीं अंतर नहीं आ सकता। अंतर आता ही है।

दरवाजे से गिलास लाकर सुशीला ने अपनी वस्तुओं को इस तरह रख दिया कि आगे के काम में किसी वस्तु की खोज-बीन नहीं करनी पड़ेगी।

चाय पीकर और पान खाकर जब गोपालबाबू दुनिया की ओर, यानी

सामने की ओर देखने लगे, तो पके आम की तरह धप्प से एक विचार उनके मन में गिरा। विचार यह गिरा कि जैसे मुनीलाल और धुनीलाल बेटे जैसे हैं, वैसे ही विमलबाबू भी छोटे भाई जैसे हैं। यही तो परिवार हुआ। इसलिए सबको पारिवारिक जीवन-दर्शन करा देना केवल उपयोगी ही नहीं, आवश्यक और अनिवार्य भी है।

विचार की सीमा पर खड़े होते हुए गोपालबाबू ने मन-ही-मन निर्णय कर लिया कि जब भी तीनों मिलेंगे, तो पहला विचार यही रहेगा।

जब गोपालबाबू के मन ने यह मान लिया, तब उनके अपने मन में फिर उठा कि यदि कहीं यह विचार ही भूल गया, तब क्या करूँगा? मेरी तो ऐसी आदत नहीं रही कि कॉलेज के शिक्षक की तरह डेरे पर पढ़कर विद्यार्थी को पढ़ाऊँ। साहित्य का शिक्षक हूँ। किताब देखकर पढ़ाता हूँ, दूसरे विषयों की तरह मुँहजवानी नहीं पढ़ाता। मन में फिर तुरंत उठा कि तब याद कैसे रहेगा? यानी तीनों को जीवन-दर्शन का जो विचार कराना चाहता हूँ, वह याद कैसे रहेगा?

गोपालबाबू पीछे लौटकर देखने लगे, तो उन्हें अपनी दादी याद आईं। कोई बात याद रखने के लिए दादी साड़ी के छोर में गाँठ तो बाँध लेती थीं, पर काम की उलझन में ऐसी उलझ जाती थीं कि गाँठ ही ठिकाने पर नहीं रहती थी। वे भूल जाती थीं। इससे काम के बीच काम ही खोया रहता था।

कबीरदास ने भी कहा है न- "खेत में बेढ़ी दिये, बेढ़हि खा गये खेत,

तीन लोक में अचरज भया, कहे कबीर कोइ देख।"

गोपालबाबू का मन छटपटाने लगा। छटपटाता भी क्यों नहीं? जो विचार वे विमलबाबू, मुनीलाल और धुनीलाल के साथ करना चाहते हैं, यानी उन्हें कहना चाहते हैं, यदि वही भूल जाएँ, तब उनकी मनोकामना कैसे पूरी होगी?

लेकिन इसी बीच गोपालबाबू के अपने मन ने कहा कि जब तक तीनों से भेंट नहीं होती, तब तक क्षण-क्षण, तीन घंटे का क्षण होता है जिसे पहर कहते हैं, मन-ही-मन उसे दोहराते रहूँगा। तब तो याद रहेगा। मन ने मान

लिया कि यही अच्छा होगा।

बैठे-बैठे जब गोपालबाबू जीवन-दर्शन के विचार को मन-ही-मन दोहराने लगे, तो मन में विचारों की दौड़ उठ गई। वैचारिक दौड़ में वे एक सीमा से दूसरी सीमा तक दौड़ लगाने लगे। विचार-दौड़ के मंत्र का भी अपना धर्म होता है। वह शांत करते-करते इतना शांत कर देता है कि आँखें झपकने लगती हैं और झपकते-झपकते आलस्य भी आने लगता है।

संयोग हुआ कि तीनों, अर्थात विमलबाबू, मुनीलाल और धुनीलाल, एक साथ गोपालबाबू के पास पहुँच गए।

तीनों को एक साथ देखते ही गोपालबाबू के मन में उठा कि चाय-वाय पीने से पहले ही अपना विचार सबके बीच रख दूँ। लेकिन तुरंत ही उनके अपने मन ने रोककर कहा कि यही तो होगा हड़बड़ी में कुछ बोल देना। कोई भी विचार वातावरण के अनुकूल किया जाए, तभी वह वजनदार होता है।

यों, गोपालबाबू के मन के भीतर छटपटाहट बनी हुई थी कि कितनी जल्दी अपने मन का विचार तीनों के मन में रोप दें। इसलिए अपने ही विचार की तरंग में गोपालबाबू का मन तरंगित होता रहा। इसी बीच चाय का क्रम पूरा हो गया, अर्थात सबने चाय पी ली।

अवसर देखकर गोपालबाबू बोले-

"विमल भाई, अपने यहाँ जीवन-दर्शन की दो विचारधाराएँ आरम्भ से काम करती आ रही हैं।"

यों, बोलने के क्रम में गोपालबाबू बोल गए, लेकिन जब उनका अपना मन लौटकर विचार करने लगा, तो उन्हें लगा कि विमलबाबू के लिए तो यह संतुलित गठरी हुई, पर मुनीलाल और धुनीलाल के लिए भारी बोझ बन गई। गोपालबाबू के अपने मन ने विचार दिया कि मुख्य विषय पर आने से पहले क्यों न मुनीलाल और धुनीलाल के मन में एक भाव-जगत निर्मित कर दूँ, जिससे विचार को स्थापित करना अधिक सहज होगा।

गोपालबाबू मन-ही-मन सोच ही रहे थे कि विमलबाबू ने बीच में पूछ

दिया-

"जीवन के दोनों दर्शन की दृष्टि साथ-साथ चलती आई है?"

गोपालबाबू ने कहा-

"हाँ।"

मुनीलाल और धुनीलाल बीच में बैठे रहने पर भी गोपालबाबू और विमलबाबू की बातचीत का आधार ठीक से नहीं समझ सके। इसलिए आँख-कान को चौकन्ना करते हुए सावधान हो गए। यह बात गोपालबाबू समझ गए। इसलिए उनके मन में उठा कि जब विचार को बारीकी से व्यक्त किया जाएगा, तब कुछ-न-कुछ अंश वे बाल-बोध रहते हुए भी समझ ही लेंगे।

इसी बीच विमलबाबू ने गोपालबाबू से पूछा-

"भाई साहब, इतनी उम्र बिताने के बाद भी मैं जीवन-दर्शन के विषय में वैसा ही हूँ, जैसे बाल-बोध मुनीलाल और धुनीलाल हैं।"

विमलबाबू के विचार पर गोपालबाबू गौर करने लगे। गौर करने के बाद उनके मन में यह विचार जागा कि यदि बात को अपनत्व के साथ कहा जाए, तो तीनों कुछ-न-कुछ समझ ही जाएँगे। जब उनके मन में कोई विचार गड़ जाएगा, तभी तो वे स्वयं उलट-पलटकर प्रश्न करेंगे, जिन्हें परिमार्जित करते हुए मैं सत्य की धरती पर लाकर खड़ा कर दूँगा।

अपने ही मन के इस विचार ने गोपालबाबू के मन को शांत किया। मन शांत होने के बाद यह विचार जागा कि व्याख्यात्मक रूप में नहीं, गणितीय शैली में विचार को व्यक्त करना अधिक अच्छा होगा।

गोपालबाबू बोले-

"विमलबाबू, आप विज्ञान के शिक्षक हैं, इसलिए गणितीय शैली को आसानी से समझेंगे। रहे मुनीलाल और धुनीलाल, यदि थोड़ा-बहुत भी समझेंगे, तो वह भी बहुत अच्छा होगा। हम दोनों तो एक से दो हो ही जाएँगे। जब दो हो जाएँगे, तब मुनीलाल और धुनीलाल की क्या बात, दो और लोगों

को भी समझा-बुझाकर बढ़ाया जा सकता है।"

जब तक किसी का विश्वास किसी पर अच्छी तरह नहीं जमता, तब तक का विचार और विश्वास जम जाने के बाद का विचार, दोनों में स्वभावानुकूल परिवर्तन होता ही है। जीवन भी तो परिवर्तनशील है, भले कहीं वह बाध्यता से परिवर्तित हो और कहीं स्वेच्छा से।

विमलबाबू बोले-

"भाई साहब, आपको जैसे सुविधा लगे, वैसे कहिए। आप जानते ही हैं कि अंकगणित के साथ रेखागणित भी पढ़ता और पढ़ाता रहा हूँ।"

विमलबाबू के स्नेह की शीतलता को गोपालबाबू ने अच्छी तरह समझकर कहा-

"पहले नियति और पुरुषार्थ को समझ लीजिए।"

नया शब्द सुनकर विमलबाबू ने अपने दोनों कान खड़े कर लिए।

विमलबाबू के कान खड़े देखकर गोपालबाबू बोले-

"व्यक्ति और समाज दोनों अलग-अलग हैं। लेकिन व्यक्ति ही समाज बनाता है। इसलिए दोनों अलग रहते हुए भी एक ही हैं। उसी तरह पुरुषार्थवाद और नियतिवाद, ये दोनों धाराएँ समाज के बीच आरम्भकाल से धड़धड़ाती हुई बहती आ रही हैं।"

गोपालबाबू का विचार सुनकर विमलबाबू ने आँखों से चश्मा उतारा, जेब से रूमाल निकालकर आँख भी पोंछी और चश्मा भी। फिर चश्मा आँखों पर लगाकर अपनी दृष्टि गोपालबाबू की आँखों पर वैसे ही टिका दी, जैसे कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सीमा पर खड़ा होकर अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को स्वयं देखता है।

विमलबाबू बोले-

"पुरुषार्थवाद और नियतिवाद समझ गया। क्या मुनीलाल, तुम लोगों ने समझा या नहीं?"

मुनीलाल बोला- "सर, पहले आप अच्छी तरह मान लीजिए। एक गुरु

मिल जाने पर एक जिंदगी की क्या बात, सात जन्मों का उद्धार होता है। यहाँ तो आप लोग दो हो गए, तब मन में निराशा क्यों होगी?"

गोपालबाबू बोले-

"दोनों वाद, यानी पुरुषार्थवाद और नियतिवाद, केवल वैचारिक समर्थन तक सीमित नहीं हैं, वे जीवनधारा में भी प्रवाहित होते आए हैं।"

गोपालबाबू का विचार सुनकर विमलबाबू मन-ही-मन उसे औंटने-पौड़ने लगे। विमलबाबू के मन का यह औंटना-पौड़ना देखकर गोपालबाबू बोले-

"विमल भाई, यहाँ पुरुषार्थवाद और नियतिवाद को विराम दीजिए और व्यक्ति तथा समाज की रूपरेखा पर ध्यान दीजिए।"

विमलबाबू का मन बार-बार चौकन्ना होने लगा, क्योंकि वह नए-नए शब्दों का नया-नया रूप देख रहा था। होता भी क्यों नहीं? जैसे गाय-भैंस दोनों समय, यानी शाम और सुबह, दूध देती हैं, वैसे ही विचार का भी अँधेरा और उजाला, दोनों पक्ष होते हैं।

विमलबाबू बोले-

"भाई साहब, आपके सामने बोलने में जरा भी लाज-शरम नहीं होती। मतलब, अपने जीवन की सच्चाई कहने में आपके सामने कोई झिझक नहीं है। अभी जैसे मुनीलाल और धुनीलाल जीवन से अनभिज्ञ हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। इसलिए अनभिज्ञ अनुभवी कैसे बनेगा, यह तो आप ही...?"

विमलबाबू के विचार और चेहरे के हाव-भाव देखकर गोपालबाबू का मन सहम गया। वे बोले-

"विमल भाई, पहले समाज का एक रूप प्रकट करता हूँ।"

'समाज का रूप' सुनकर विमलबाबू के अपने मन ने कहा कि समाज में रहते हुए भी, अपने को सामाजिक कहते हुए भी, मैं समाज को अच्छी तरह नहीं जान पाया हूँ। लेकिन 'जब जागे तभी सवेरा।'

विमलबाबू बोले- "आपको जो उचित लगे।"

गोपालबाबू बोले- "संस्कार और विचार जहाँ से प्रभावित होते हैं, वह पहले कहता हूँ। समाज का अधिकांश भाग, यानी बहुसंख्य लोग, या तो अहंभावना से रोगग्रस्त हैं या हीनभावना से।"

गोपालबाबू के विचार को विमलबाबू आधा-अधूरा समझ भी रहे थे और आधा-अधूरा नहीं भी समझ रहे थे। लेकिन मन ने कहा कि बीच में टोकाटाकी करने से अच्छा है कि पहले एक बार पूरी बात सुन ली जाए। बाद में जो समझ में नहीं आएगा, उसे दोहराकर पूछ लेंगे। आज यदि समय मिलेगा, तो बहुत अच्छा, और यदि समय नहीं मिलेगा, तो दूसरे दिन पूछ लेंगे। यही सोचकर विमलबाबू ने अपने आँख-कान चौकन्ने कर लिए। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि जैसे प्राणशक्ति शरीर में प्रवेश कर रही हो।

विमलबाबू का भाव देखकर गोपालबाबू समझ गए कि उनमें आगे सुनने की जिज्ञासा जाग रही है। वे बोले-

"विमलबाबू, वैदिक युग में ही पुरुषार्थवाद और नियतिवाद, दोनों का जन्म हुआ। जैसे अनेक वैदिक ऋषि पुरुषार्थवादी हुए, वैसे ही अनेक ऋषि नियतिवादी भी हुए।"

विमलबाबू के मुँह से सहज ही निकल गया-

"तब तो दोनों की जड़ बहुत गहरी है!"

गोपालबाबू बोले-

"हाँ। आगे चलिए। पूर्व मध्ययुग में बुद्धदेव हुए, महावीर हुए, जो केवल विचार से ही पुरुषार्थवादी नहीं थे, व्यवहार से भी पुरुषार्थवादी थे। उन्होंने जीवन के मूल को पकड़कर अपना विचार प्रतिपादित किया। उसी तरह दूसरी ओर, उसी समय आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य गोशालक नियतिवादी हुए।"

बिना सोचे विमलबाबू बीच में बोल पड़े- "तब तो इतिहास ने भी लोगों को भ्रमित किया है!"

विमलबाबू को बहकते देखकर गोपालबाबू ने अपने विचार को मोड़ पर लाते हुए कहा-

"केवल भ्रमित ही किया है। इतिहास क्या है और पुराण क्या है, यह भी अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुआ है। इसी बीच मनोवैज्ञानिक भी हैं।"

'मनोवैज्ञानिक' शब्द सुनकर विमलबाबू बोले-

"फ्रायड भी मनोवैज्ञानिक ही हुए न?"

गोपालबाबू बोले-

"हाँ, हुए। उनके सम्बन्ध में रूसी मनोवैज्ञानिक मास्लोव ने लिखा है कि फ्रायड और डार्विन जैसे नियतिवादियों ने समाज में गलत धारणाएँ फैलाकर समाज को आगे बढ़ने नहीं दिया।"

विमलबाबू ने मन-ही-मन निर्णय किया कि बेकार में मनोवैज्ञानिकों के बीच उलझ जाना ठीक नहीं, क्योंकि अपने जीवन का दर्शन स्वयं करना चाहिए। वे बोले-

"अपने जीवन का दर्शन स्वयं कैसे होगा?"

विमलबाबू के विचार का ओज देखकर, जिसे वैज्ञानिक भाषा में ऊर्जा या शरीर की बिजली भी कहा जाता है, गोपालबाबू बोले-

"हाँ, जीवन-दर्शन से ही जीवन को पाया जा सकता है। लेकिन उसके लिए पहले अपने भीतर झाँककर देखना आवश्यक है। आत्मा परमात्मा भी बनती है। इस सूत्र के जो पहले सूत्रधार हुए, उन्होंने धरती पर बहुत बड़े सत्य का अनावरण किया। वही पुरुषार्थवाद की पहली घोषणा है।"

विमलबाबू आधे मुँह से बोले-

"कौन-सी घोषणा?"

गोपालबाबू बोले-

"समाज में अभी भी बहुसंख्य लोग ऐसे हैं जो अपनी भाग्य-रेखा देखते रहते हैं। भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा। बोलते समय यह भी कहते हैं कि हम सब इक्कीसवीं सदी के मनुष्य हैं।"

विमलबाबू बोले-

"इक्कीसवीं सदी का मनुष्य कैसे बनेंगे?"

विमलबाबू का विचार सुनकर गोपालबाबू का मन अपने-आप मुस्कराने लगा। उन्हें लगा कि विमलबाबू अभी भी जिंदगी को ठट्ठा समझ रहे हैं। वे बोले-

"विमलबाबू, जिस मनुष्य में जितना शक्तिबोध, विवेक, संकल्प और मनोबल विकसित होगा, वह उतना आगे बढ़ेगा। और जिसमें ये जितने कम होंगे, वह उतना पीछे रह जाएगा।"

❑❑❑
❑❑
❑

Notes

जगदीश प्रसाद मण्डल

श्री जगदीश प्रसाद मण्डल समकालीन मैथिली साहित्य के उन विशिष्ट रचनाकारों में हैं जिनकी सृजनशीलता जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों से निर्मित हुई है। बिहार के मधुबनी ज़िले के बेरमा गाँव में 5 जुलाई 1947 को जन्मे मण्डल ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर दो विषयों में एम.ए. की उपाधि अर्जित की। किन्तु उन्होंने अपने जीवन की दिशा शहरों की ओर मोड़ने के बजाय ग्रामीण परिवेश को ही अपनी कर्मभूमि बनाया। कृषि, विशेषतः सब्ज़ी की खेती को अपनाते हुए उन्होंने गाँव के बीच रहकर जीवन को निकट से देखा, जिया और समझा। ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ, शोषण और सामंती प्रवृत्तियाँ उनके संवेदनशील मन को गहराई से उद्वेलित करती रहीं। वे केवल दर्शक बनकर नहीं रहे, बल्कि सामाजिक प्रश्नों के बीच सक्रिय रूप से खड़े हुए और जनचर्चा तथा सामाजिक आंदोलनों से जुड़े। इस प्रक्रिया में उन्हें कई मुकदमों का सामना करना पड़ा और अनेक बार जेल भी जाना पड़ा। लगभग तीन दशकों से अधिक समय तक चले इन सामाजिक अनुभवों ने उनके व्यक्तित्व और दृष्टि को गहराई से आकार दिया। सन् 2000 के बाद इन जीवनानुभवों ने साहित्यिक अभिव्यक्ति का रूप धारण किया और उनका लेखन मैथिली साहित्य में एक सशक्त उपस्थिति के रूप में उभरा। उनके उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ, सामाजिक विषमता, मानवीय संवेदना और संघर्षशील चेतना का सजीव तथा विश्वसनीय चित्रण मिलता है। यही कारण है कि उनका साहित्य केवल कथा-सृजन भर नहीं, बल्कि समय और समाज के अनुभवों की प्रखर अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जाता है। उनकी रचनात्मकता ने व्यापक पाठक-समाज को प्रभावित किया है और अनेक पाठकों तथा अनुवादकों को उनकी कृतियों की ओर आकर्षित किया है। अपने उल्लेखनीय साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार, टैगोर साहित्य पुरस्कार, अमर शहीद रामफल मण्डल राष्ट्रीय पुरस्कार, यात्री चेतना पुरस्कार, विदेह सम्मान तथा राजकमल चौधरी साहित्य सम्मान सहित अनेक प्रतिष्ठित अलंकरण प्राप्त हुए हैं। आज श्री जगदीश प्रसाद मण्डल अपनी सहज जीवन-दृष्टि, जनोन्मुख प्रतिबद्धता और यथार्थपरक लेखन के कारण समकालीन मैथिली साहित्य में एक विशिष्ट और सम्मानित स्थान रखते हैं।

अवधेश पटेल

श्री अवधेश पटेल समकालीन हिंदी लेखन, दर्शन और मानवीय संवेदना के क्षेत्र में सक्रिय लेखक, चिंतक और शिक्षक हैं। वे वर्तमान में लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर विमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने स्नातक की शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से और परास्नातक की शिक्षा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से प्राप्त की है। वर्तमान में वे डॉ. हरिसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश से पीएचडी कर रहे हैं।

उनकी शैक्षणिक रुचियाँ मुख्य रूप से नैतिक दर्शन, भारतीय दर्शन, मानव-संबंधों के दर्शन और समकालीन सामाजिक चिंतन से जुड़ी हैं। वे दर्शन को केवल पुस्तकीय ज्ञान का विषय नहीं मानते, बल्कि उसे मनुष्य के जीवनानुभव, संबंधों, संघर्षों और नैतिक प्रश्नों से गहराई से जुड़ा हुआ समझते हैं। इसी कारण उनके विचार और लेखन में जीवन की ठोस वास्तविकताएँ तथा मनुष्य की आंतरिक संवेदना साथ-साथ दिखाई देती हैं। अध्यापन उनके लिए केवल ज्ञान-संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि संवाद, प्रश्नाकुलता और मानवीय समझ को विकसित करने की प्रक्रिया है। वे विद्यार्थी और समाज, दोनों के बीच विचारशीलता, संवेदनशीलता और नैतिक विवेक की उपस्थिति को आवश्यक मानते हैं।

लेखन के क्षेत्र में अवधेश पटेल की शैली दार्शनिक गहराई, भावनात्मक ऊष्मा और सरल अभिव्यक्ति का सुंदर संतुलन प्रस्तुत करती है। उनकी रचनाओं में जीवन, स्मृति, समय, प्रेम, संबंध और सामाजिक यथार्थ के जटिल आयामों को सहज, संवेदनशील और विचारपूर्ण भाषा में व्यक्त करने का प्रयास दिखाई देता है। उनका पहला उपन्यास 'इसे इश्क कहें या कुछ और' और दूसरा उपन्यास 'रिश्तों की रहस्यमयी दुनिया' पाठकों के बीच सराहे गए हैं। इसके अतिरिक्त, उनकी अनेक कविताएँ, कहानियाँ और साहित्यिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

संपर्क सूत्र: avadheshpatel560@gmail.com

पल्लवी प्रकाशन
नेहरू मार्ग, तुलसी भवन, निर्मली,
जिला- सुपौल, बिहार: 847452

Rs. 299/-

ISBN: 978-93-48865-31-1
9 789348 865311